सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा ।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित मानव को जीना होगा ॥

वार्षिक मूल्य १॥) एक प्रति का ≠)।

भाग २ मथुरा २० फरवरी सन् १९४१ अङ्क २

त्याग का अखंड नियम

किसी को कुछ दो या उसका किसी प्रकार का उपकार करो तो बदले में उस व्यक्ति से किसी प्रकार की आशा न रखो। तुम जो कुछ दोगे वह हजार गुना होकर लौट आवेगा, परन्तु उसके लौटने की तिथि को नहीं गिनना चाहिये। अपने में देने की शक्ति रखो, देते चलो, क्योंकि देकर ही फल प्राप्त कर सकोगे। ध्यान पूर्वक देखो सारा विश्व तुम्हें कुछ देरहा है, फिर तुम दूसरों को देने में क्या संकोच करते हो? आज नहीं तो कल, हँस कर नहीं तो रोकर, तुम्हें किसी न किसी दिन त्याग करना ही पड़ेगा।

तुम खूब इकट्ठा करते हो, संसार की सम्पदायें अपनी मुट्ठी में बांध लेते हो परन्तु प्रकृति तुम्हारा गला दबा कर मुट्ठी खुलवा लेती है। जब तुम कहते हो कि "नहीं मैं न दूंगा" उसी क्षण ज़ोर की चपत लगती है और तुम घायल हो जाते हो। संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो प्रत्येक वस्तु को देने, परित्याग करने के लिये बाध्य न हो। इस अखंड नियम के प्रतिकूल आचरण करने के लिए जो जितना ही प्रयत्न करेगा वह अपने को उतना ही दुखी अनुभव करेगा।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. आत्म जागृति (कविता)—श्री जिज्ञासु	३
२. अध्यात्म पथ की ओर—संपादकीय	४
३. सर्व धर्म सम भाव—महात्मा गान्धी	६
४. प्रलय कैसे होगी	७
५. वेदों का अमर सन्देश – डा० कौशिक	७
६. आत्मा क्या है ?—स्वामी विवेकानन्द	८
७. सत्य की भावना—ब्रह्मर्षि सत्यदेवजी	९
८. पाप का प्रायश्चित—श्री हनुमत्प्रसाद	१०
९. शेख सादी की सूक्तियाँ—गुलिस्ताँ से	११
१०. निर्दोष कौन है ? – मंगलचन्द भण्डारी	१२
११. दुष्ट वृत्तियों से बचाव—ठा० रामकरण सिंह	१३
१२. काटो मत पर·········श्री आनन्द कुमार	१४
१३. मैं परलोक वादी कैसे बना ? श्री बी० डी० ऋषि	१५
१४. दुख ही सुख का पिता है—श्री रामसेवक गुप्त	१६
१५. प्राणायाम की विधि—पं० भोजराज शुक्ल	१७
१६. धर्म की प्रवृति—श्री० त्रिलोकनाथ जी	१८
१७. प्रेतों का अस्तित्व—श्री रामरत्न बडोला	१९
१८. सत्य सनेह—श्री० श्रीराम बाजपेयी	२०
१९. मानसी पूजा—श्री० रामभरोसे पाठक	२१
२०. शिखा के लाभ—वि० रामस्वरूप अमर	२२
२१. कर्त्तव्य पालन—अनन्तराम दुबे	२४
२२. स्वर योग से रोग निवारण—पं० नारायणप्रसाद	२५
२३. ईश्वर की उपासना—श्री धर्मपालसिंह	२७
२४. प्रभु दर्शन दीजिए—श्री सावित्रीदेवी	२८
२५. कविता कुंज—	२९
२६. समालोचना—	३०

'अखण्ड-ज्योति' के नियम

(१) अखण्ड ज्योति का वार्षिक मूल्य १॥) रु० एव प्रति का नौ पैसा है । मूल्य मनीआर्डर से ही भेजना चाहिये । वी० पी० मंगाने पर ।-) अधिक देने पड़ते हैं ।

(२) लेख या कविताएं केवल आध्यात्मिक योगशास्त्र तन्त्र विज्ञान, मैस्मरेजम, मानसिक शक्तियों की विवेचना, प्राकृतिक चिकित्सा तथा सदाचार पर ही आने चाहिये । अन्य विषयों को स्थान न दिया जायगा । लेख जहाँ तक हो सके छोटे होने चाहिये ।

(३) उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना चाहिये । अन्यथा उत्तर न दिया जायगा ।

(४) प्रत्येक अङ्क जरूरत भर ही छपाया जाता इसलिये पुराना अङ्क एक भी नहीं बचता । पुराने अङ्क ले. के लिये कोई सज्जन पत्र व्यवहार न करें ।

(५) 'अखण्ड ज्योति' के मूल्य में कमी करने के लिये पत्र व्यवहार करना व्यर्थ है । एक वर्ष से कम के लिये 'अखण्ड ज्योति' के ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

(६) 'अखण्ड ज्योति' की एजेन्सी कम से कम ६ प्रति प्रतिमास लेने पर दी जाती है । जिन्हें एजेन्सी ले. हो वे कमीशन आदि के बारे में पत्र व्यवहार करें ।

(७) 'अखण्ड ज्योति' प्रतिमास ठीक २० तारीख को निकल जाती है । हमारे यहाँ से दो बार जाँच कर सब ग्राहकों के पास अखबार भेजा जाता है । फिर भी जिनको एक सप्ताह के अन्दर न मिले उन्हें रुष्ट न होकर डाकखा. के उत्तर सहित हमें लिखना चाहिये ।

(८) अध्यात्म विद्या प्रेमियों के चित्र 'अखण्ड ज्योति' में छापे जाते हैं । पाठकों से प्रार्थना है कि वे लोक में सदाचारी एवं ईश्वर भक्त सज्जनों के परिचय भिजवाने की कृपा करें ।

पत्र व्यवहार का पता :—

मैनेजर—अखण्ड-ज्योति कार्यालय
मथुरा ।
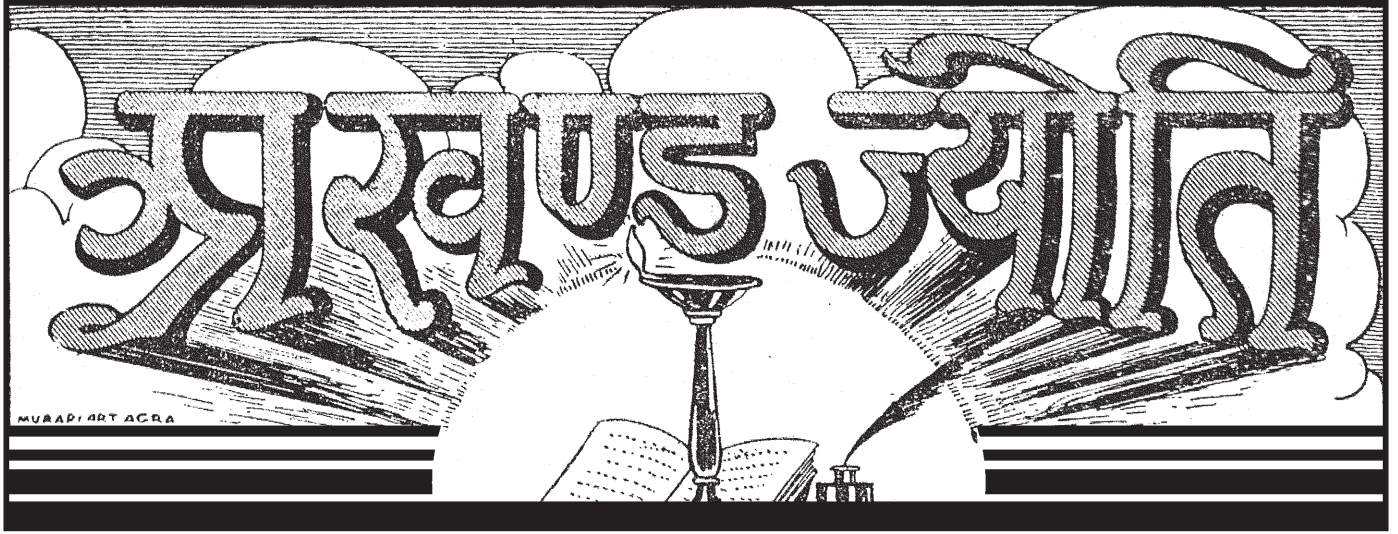
सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

भाग २] २० फरवरी सन् १९४१ [अंक २
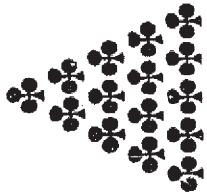
आत्म-जागृति

[लेखक—श्री जिज्ञासु]
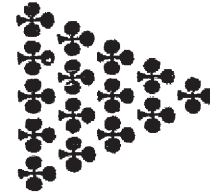
हम मंगलमय प्रभु के सुत हैं, पुण्य-पूत अधिकारी।
शासक हैं अपनी दुनियां के, हम हैं सत्ताधारी॥
हम विशुद्ध चैतन्य अमर हैं, निर्विकार भय हारी।
नाच रही है वसुधा सारी, लेकर शक्ति हमारी॥
आज समर्थ हुए, हमने, अपने अधिकार सँभाले।
हट जावें चुपचाप मार्ग में, शूल बिछाने वाले॥
विघ्न विरोध भगो मग में से, राह हमारी छोड़ो।
व्यर्थ हिनहिनाने वाले, घोड़ो! ठहरो, मुँह मोड़ो॥
अब न किसी की दाल गलेगी, पाप न टिक पावेंगे।
भ्रम के भूत जहाँ से उपजे, वहीं समा जावेंगे॥
वह अव्यवस्था गई, कर्मचारी अब आँखें खोलें।
सावधान सब रहें न कोई, अमृत में विष घोलें॥

× × × ×

अपने पन का ज्ञान हुआ, अब अपने को पहिचाना।
अपनी आँख खुली सब देखा, अपना और बिराना॥

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौतका मुकट, विश्व-हित मानवको जीना होगा॥

मथुरा, २० फरवरी सन् १९४१

आध्यात्म पथ की ओर।

जीवन वृक्ष की जड़ मन के अन्दर है। अकसर बाहर की परिस्थितियाँ जीवन से मेल नहीं रखतीं, तब बड़ा दुख होता है। पिता की मृत्यु हो गई, हम बालकों की तरह फूट-फूट कर रोते हैं। धन चोरी चला गया, हम दुख से व्याकुल हो जाते हैं। शरीर अस्वस्थ हो गया, हमें चारों ओर मृत्यु ही नाचती नजर आती है। कार्य में सफलता नहीं मिली, हम चिन्ता की चिता में जल उठते हैं। दूसरे लोग कहना नहीं मानते, हम क्रोध से क्षुब्ध हो जाते हैं। इनमें से एक ही परिस्थिति जीवन को दुखमय बना देने के लिये पर्याप्त है, फिर यदि कई घटनाऐं एक साथ मिलें तो कहना ही क्या, जीवन में दुख शोकों की भट्टी जलने लगती है। कई बार ऐसी कोई परिस्थिति नहीं आती, फिर भी हमें उनकी कल्पना करके अपने को दुखी बनाते रहते हैं। मेरे एक ही पुत्र है, वह मर गया तो? घर में अकेला कमाने वाला हूँ, मेरी मृत्यु हो गई तो? पशुओं को कोई चुरा लेगया तो? कोई झूठा मुकदमा लग गया तो? इस प्रकार का आशंकाऐं कल्पित होती हैं। जितना भय होता है, वास्तव उसका चौथाई भी नहीं आता। हम देखते हैं कि कई धनवान और बलवान अपने घर में डाका पड़ जाने, अपने कत्ल हो जाने की आशंका से रात भर चैन की नींद नहीं लेते। हर घड़ी भय उन्हें सताता रहता है, यद्यपि जैसा वे सोचते हैं, वैसी घटना जीवन भर नहीं होती और अपनी इन्द्रियों का तो कहना ही क्या? वे यदि काबू में न हों तो हिरन की तरह चौकड़ी मारती हैं। तृप्ति उन्हें होती ही नहीं। अपने अपने भोगों के लिये उनकी सदा "और लाओ!" "और लाओ!!" की रट लगी रहती है।

दैनिक जीवन की यह अवस्थाऐं मनुष्य को एक बड़ी उलझन में डाल देती है। दुख, शोक, तृष्णा, चिन्ता, भय, क्रोध, लोभ, द्वेष की भावनाऐं उसके मस्तिष्क पर अधिकार जमा कर उसे बड़ी दयनीय दशा में असहाय छोड़ देती है। वह शान्ति के लिये प्यासे मृग की तरह चारों ओर दौड़ता है परन्तु दृष्टि दोष के कारण सफेद भूमि ही जल दिखाई पड़ती है, दौड़ कर वहाँ तक पहुँचता है, परन्तु वहाँ धरा ही क्या था? दौड़ने के श्रम से पहले की अपेक्षा भी अधिक अशान्ति हो जाती है। धन कमाने के लिए अधर्म करते हैं, इन्द्रिय तृप्ति के लिये पाप करते हैं, सुख के लिये मायाचार करते हैं परन्तु हाथ कुछ नहीं आता। जितना चाहते हैं जितनी तृष्णा होती है, उसका शतांश भी प्राप्त नहीं हुआ तो ओस चाटने पर तृप्ति कैसे हो सकती है। एक कामी पुरुष रात दिन सैकड़ों सुन्दरियों का चिन्तन करता रहता है, कितना ही प्रयत्न करने पर भी उसे उतनी स्त्रियाँ भोग के लिये नहीं मिल सकतीं। यदि नहीं मिलीं तो शान्ति कहाँ? संसार के निर्बाधित क्रम के अनुसार जो घटनाऐं घटित होती रहती हैं, उनसे हम बच नहीं सकते। हम कितना ही प्रयत्न क्यों न करें प्रिय जनों की मृत्यु होगी ही, दान, भोग के बाद बचा हुआ धन नष्ट होगा ही। बेशक मनुष्य बहुत शक्तिशाली है, प्रयत्न करने पर परिस्थितियों को बहुत कुछ अपने अनुकूल कर सकता है, परन्तु यह न भूलना चाहिये कि मनुष्य-मनुष्य ही है। आज की

परिस्थिति में वह ईश्वर नहीं है। घटनाऐं संसार के क्रम के साथ हैं वह होती हैं और होंगी। उनके प्रवाह से भगवान् राम और योगिराज कृष्ण भी नहीं बच सके। परिस्थितियों से कोई नहीं बच सकता।

परिस्थितियों का मुकाबिला मनुष्य कर सकता हैं। वह अपना पथ खुद निर्माण कर सकता है। दुख में से सुख खोज सकता है और अपने जीवन में नरक तुल्य दिखाई देने वाली वेदनाओं से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। तीन चौथाई दुख तो उसके अपने पैदा किये हुए होते हैं। अपने को ठीक जगह पर खड़ा कर दिया जाय तो अधिकांश दुखों से अपने आप छुटकारा मिल जाता है। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं, जो संसार क्रम के साथ सम्बन्धित हैं, उनको सहन करने की शक्ति विवेक द्वारा प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार अपने को विवेकपूर्वक ठीक स्थिति पर रख कर हम संसार के समस्त दुखों से छुटकारा पा सकते हैं। यही आध्यात्म पथ है। बाहरी परिस्थितियाँ आदमी को सुख या दुख नहीं दे सकतीं। यदि ऐसा होता तो समस्त धनी सुखी और सब गरीब दुखी हुए होते, परन्तु वास्तव में बात इससे उलटी है। निकट से परीक्षा करने पर अधिकांश गरीब सुखी और अधिकांश धनी दुखी मिलेंगे।

मनुष्य स्वभावतः आनन्द प्रिय है, उसे हर घड़ी आनन्द की तलाश रहती है और जो कुछ सोचता विचारता या करता धरता है वह इसीलिये कि सुख मिले। परन्तु वह अज्ञान में भटक जाता है, ऊँट को घड़े में तलाश करता है। धन और भोगों के पीछे दुनियां पागल है। दाद को खुजलाने में लोग बुरी तरह लगे हुए हैं, समझते हैं कि शायद यही सुख है। परन्तु यह कैसा सुख जिसकी खुजली बढ़ती ही जाती है और अन्त में चमड़ी छिल जाने पर दुखदायी घाव उत्पन्न हो जाते हैं। दाद के घावों में भी खुजली उठती है। उन घावों को खुजाने में जैसा सुख दुख मिलता है वैसा ही आम तौर पर सब भोगते हैं। खुजली का सुख लूटने के लिये प्रयत्न करते हैं, पर घाव दूना बढ़ कर असह्य वेदना उत्पन्न कर देता है।

इस अज्ञान से छुटकारा पाने के लिये आध्यात्म पथ पर अग्रसर होना ही एक मात्र उपाय है। अज्ञान के अन्धकार से छुटकारा पाने के लिये प्रकाश की ओर चलना चाहिये। माया से बच कर ईश्वर की ओर मुँह करना चाहिये। तभी वास्तविकता का ज्ञान होगा और तभी सब वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप समझ में आवेगा। अँधेरे में पानी के धोखे दवात की स्याही पी जाने से कडुआ मुंह हो जाता है, इस कडुऐ पन को दूर करने का उपाय नहीं है, कि उस स्याही को मीठा मिला कर पीने का प्रयत्न करो, वरन् उचित यह है कि प्रकाश जलाओ और देखो कि जिन वस्तुओं से हम उलझे हुए थे वे वास्तव में क्या हैं? इसी प्रकाश द्वारा तुम्हें पता चलेगा कि पानी कहाँ रखा हुआ है। शीतल जल पीने से ही प्यास बुझेगी। यह अन्धकार में नहीं प्रकाश में ही हो सकता है। आध्यात्म पथ प्रकाश का मार्ग है। वास्तविकता प्रकाश में ही मालूम हो सकती है। प्रकाश की जड़ें आत्मा में हैं। आत्म-स्वरूप का दर्शन करके ही सारे दुख शोकों को जान और त्यागा जा सकता है। आत्मा सुखों का मूल है। जीवन का वास्तविक आनन्द उसी से प्राप्त हो सकता है। श्रुति कहती है—तमसो मा ज्योतिर्गमय, अन्धकार से प्रकाश की ओर चलो। पाठको, आध्यात्म पथ की ओर चलो।

———

दुःखों को साहस पूर्वक सहन करो, इससे तुम्हारी आत्मा किले की भांति अजय हो जायगी और फलस्वरूप भविष्य में आने वाली कोई कठिनाई तुम्हें विचलित न कर सकेगी।

* * *

सर्वधर्म समभाव।

(महात्मा गांधी)

यह विषय इतने महत्व का है कि इसे यहाँ कुछ और विस्तार से लिखता हूँ। अपना कुछ अनुभव लिख दूं तो शायद समभाव का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाय। यहाँ की तरह फिनिक्स में भी नित्य प्रार्थना होती थी। वहाँ हिन्दू, मुसलमान और ईसाई थे। स्वर्गीय सेठ रुस्तम जी या उनके लड़के अक्सर उपस्थित रहते ही थे। सेठ रुस्तम जी को "मने वहालुँ वहालुँ दादा रामजीनुँ नाम" (मुझे राम नाम प्रिय है) बहुत अच्छा लगता था। मुझे याद आता है कि एक बार मगनलाल या काशी हम हम सबको गवा रहे थे। सेठ रुस्तम जी उल्लास में में बोल उठे—"दादा रामजी के बदले 'दादा होरमजद' गाओ न।" गवाने और गाने वालों ने इस सूचना पर तुरन्त इस तरह अमल किया मानों वह बिलकुल स्वाभाविक हो और इसके बाद से रुस्तम जी जब उपस्थित होते, तब तो अवश्य ही और वह न होते तब भी कभी कभी हम लोग वह भजन 'दादा होरमजद' के नाम से गाते। स्वर्गीय सेठ दाऊद जी का पुत्र हुसेन तो आश्रम में बहुधा रहता। वह प्रार्थना में उत्साहपूर्वक शामिल होता। वह खुद बहुत ही मधुर सुर में 'आर्गन' के साथ 'ये बहारे बाग़ दुनिया चन्द रोज" गाया करता। वह भजन उसने हम सबको सिखा दिया था और वह अक्सर प्रार्थना में गाया जाता था। हमारी यहाँ की आश्रम भजनावली में उसे स्थान मिला है, वह सत्यप्रिय हुसेन की स्मृति है। उसकी अपेक्षा अधिक तत्परता से सत्य का आचरण करने वाला नवयुवक मैंने नहीं देखा। जोसफ़ रायपेन आश्रम में अक्सर आते जाते थे। वह ईसाई थे। उन्हें 'वैष्णव जन' वाला भजन बहुत अच्छा लगता था। उन्हें संगीत का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने 'वैष्णव जन' के स्थान पर "क्रिश्चियन जन तो तेने कहिये" अलाप दिया। सब ने तुरन्त उनका साथ दिया। मैंने देखा कि जोसफ़ के आनन्द का वारापार न रहा।

आत्मसन्तोष के लिये जब मैं भिन्न-भिन्न धर्मों की पुस्तकें उलट रहा था, तब मैंने ईसाई, इस्लाम, जरथुस्र, यहूदी और हिन्दू—इतने धर्मों की पुस्तकों का अपना सन्तोष कर लेने भर को परिचय प्राप्त किया था। मैं कह सकता हूँ कि इस अध्ययन के समय सभी धर्मों के प्रति मेरे मन में समभाव था। मैं यह नहीं कहता कि उस समय मुझे यह ज्ञान था। उस समय समभाव शब्द का भी पूरा परिचय न होगा। परन्तु उस समय की अपनी स्मृतियों को ताज़ी करता हूँ तो मुझे याद नहीं आता कि उन धर्मों के संबन्ध में टीका-टिप्पणी करने की इच्छा तक हुई हो। परन्तु इनके ग्रन्थों को धर्मग्रन्थ मानकर आदर पूर्वक पढ़ता और सब में मूल नैतिक सिद्धान्त एक जैसे ही पाता था। कितनी ही बातें मैं न समझ सकता था। यही बात हिन्दू धर्मग्रन्थों के संबन्ध में भी थी। आज भी कितनी ही बातें नहीं समझता। पर अनुभव से देखता हूँ कि जिसे हम नहीं समझ सकते वह जरूर ग़लत है, ऐसा मानने में जल्दबाजी करना भूल है। बहुत सी बातें जो पहले न समझ पड़ती थीं, आज दीपक की तरह दिखाई देती हैं। समभाव का अभ्यास करने से अनेक गुत्थियाँ अपने आप सुलझ जाती हैं और जहाँ हमें दोष ही दिखाई दें वहाँ उसे दरसाने में भी जो नम्रता और विवेक होता है, उससे किसी को दुख नहीं होता।

एक कठिनाई शायद रह जाती है। पिछली बार मैंने कहा था कि धर्म-अधर्म का भेद रहता है और अधर्म के प्रति समभाव रखने का अभ्यास करना यहाँ उद्देश्य नहीं है। यदि ऐसा हो तो धर्माधर्म का निर्णय करने में ही क्या समभाव की शृङ्खला नहीं टूट जाती? ऐसा प्रश्न उठ सकता है और यह भी सम्भव है कि ऐसा निर्णय करने वाला भूल कर बैठे। परन्तु हममें यदि वास्तविक अहिंसा मौजूद

प्रलय कैसे होगी।

दुनियाँ का अन्त कैसे होगा—इस प्रश्न पर भूतत्व वेत्ता बहुत दिनों से विचार कर रहे हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि ज्यों-ज्यों पृथ्वी की उम्र ज्यादा होती जायगी त्यों-त्यों धीरे-धीरे उसके शिगाफ खुलते जायँगे, जो उस पर अंकित होंगे। यहाँ तक कि पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे और वह बड़े जोर से फटकर वायु मण्डल में बिखर जायगी और उसके टुकड़े सूर्य के चारों तरफ घूमने लगेंगे। शेष सब सौर ग्रह उसी तरह बने रहेंगे, जैसे पहले थे। इससे वर्षों पहले चांद का अन्त इसी तरह हो चुका होगा। पृथ्वी के लोग देखेंगे कि चाँद बम की तरह फट जायगा। रातें सिवा तारों की रोशनी के बिलकुल अंधेरी हुआ करेंगी। इसके हजारों साल बाद एक तारा फटेगा जो इस इस बात की निशानी होगी कि पृथ्वी का अन्त नजदीक है। (संकलित)

रहे तो हम वैर-भाव से बच जाते हैं। क्योंकि अधर्म देखने पर भी उस अधर्म का आचरण करने वाले के प्रति तो प्रेम-भाव ही होगा और इससे या तो वह हमारी दृष्टि स्वीकार कर लेगा अथवा हमें हमारी भूल दिखावेगा, या दोनों एक-दूसरे के मतभेद को सहन करेंगे। अन्त में विपक्षी अहिंसक न हुआ तो वह कठोरता से काम लेगा। फिर भी यदि हम अहिंसा के सच्चे पुजारी होंगे तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि हमारी मृदुता उसकी कठोरता को दूर कर ही देगी। दूसरे को उसकी भूल के लिये भी हमें पीड़ा नहीं पहुँचानी है, हमें खुद ही कष्ट सहना है। इस स्वर्ण नियम का जो पालन करता है, वह सभी संकटों से बच जाता है।

वेदों का अमर सन्देश

सहृदयं सांमनस्यम्। अविद्वेषं कृणो मिवः।
अथर्व ३। ३०। १

ईश्वर की आज्ञा है कि सब लोग आपस में दया भाव रखें। मन में उत्तम विचार किया करें और आपस में प्रेम का बर्ताव करें। एक दूसरे से कभी द्वेष न करें।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
ऋग १०। १९१। २

श्रेष्ठ और सदाचारी पुरुष जिस प्रकार कर्त्तव्य करते हैं। उसी प्रकार हर एक मनुष्य को अपना कर्त्तव्य उत्तम रीति से करना चाहिए।

अभयं मित्रादभयममित्रादयं ज्ञातादभयं परोक्षात्॥ अथर्व १९। १५। ६

मनुष्यों को उचित है कि वे अपने मन को बलवान बनाकर किसी से भी न डरते हुए, सदा निर्भयता पूर्वक अच्छे कर्त्तव्य करते रहें।

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं। मित्रा देव जनायूयम्।
अथर्व ११। ११। २

सब लोगों को उचित है कि वे परस्पर प्रेम करें और ज्ञानी बनकर अपनी उन्नति के लिए यत्न करें।

हृत्प्रतिष्ठं यदिजिरं जविष्ठं। तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु। यजु० ३४। ६

मनुष्यों का मन हृदय में रहता है। वह मन अत्यन्त बलवान और वेगवान है। उस मन को सदा उत्तम विचारों का मनन करने में ही लगाना चाहिए।

भद्रं नो अपि वातय। मनो दक्षमुत ऋतुम्॥
ऋ० १०। २५। १

मनुष्यों को उचित है कि वे सब के कल्याण के लिए सब को बलवान बनाने के लिए और उत्तम पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए अपने मन को उत्साहित करें।

आत्मा क्या है ?

(स्वा० विवेकानन्दजी महाराज)

मनुष्य की आत्मा क्या है ? दार्शनिकों के एक समुदाय का मत है कि एक सत्ता ईश्वर की है और उसके अतिरिक्त अपरिमित आत्मायें हैं, जो रूप, गुण तथा अन्य समस्त बातों में उस ईश्वरीय सत्ता-ब्रह्म-से सर्वथा भिन्न है। यह सिद्धान्त है। इसके उत्तर में एक दूसरे सम्प्रदाय ने कहा कि आत्मा एक अत्यन्त अपार्थिव सत्ता का अंश है। मानो यह शरीर स्वयं एक छोटा सा संसार है। इस शरीर के अन्तराल में मन और बुद्धि हैं और इन दोनों ही के अन्तराल में आत्मा ठीक इसी प्रकार यह सारा संसार एक शरीर है। इसके अन्तराल में आत्मा। जिस तरह यह शरीर विश्वव्यापी शरीर का एक अंश है, उसी तरह यह मन विश्व मन का तथा आत्मा का एक अंश है। इस तरह का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत वाद के नाम से प्रसिद्ध है।

अब हम यह जानते हैं कि विश्व व्यापी आत्मा अनंत है। परन्तु भला अनन्तता के खण्ड कैसे हो सकते हैं ? वह तोड़ा कैसे जा सकता है ? उसमें विभाग कैसे होगा ? यह कहना कि मैं उस अनन्त का एक कण हूँ, बहुत ही कवित्वमय है। परन्तु विवेकशील मन के लिये यह बात एक बहुत ही बेतुकी है। अनन्त को विभक्त करने का तात्पर्य क्या है ? क्या कोई परिमेय पदार्थ है, जिसे आप खण्ड २ विभक्त कर सकेंगे ? जिस वस्तु में परिमाण नहीं ह, जिसे हम नाप नहीं सकते, उसके खण्ड भी नहीं किये जा सकते, जिससें खण्ड करना संभव है, उससे फिर अपरिमेयता नहीं रह जाती। इसका निष्कर्ष यह निकला कि आत्मा जो कि विश्व व्यापी है वह 'तुम' हो और तुम एक खण्ड नहीं, बल्कि उसके पूर्ण अंश हो। तुम ईश्वर के पूर्ण अंश हो। परन्तु ये सब विभिन्नतायें क्या हैं ? इस संसार में हमें लाखों विभिन्न आत्मायें मिलती हैं। ये सब क्या है ? जिस समय पानी के लाखों बुदबुदों पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस समय उसमें से हर एक सूर्य की प्रतिमूर्तियां दिखाई देती हैं। हर एक बुद्बुदे में सूर्य की अविकल मूर्ति परि लक्षित होती है। इस प्रकार उस समय हमें लाखों सूर्य दिखाई देते हैं, यद्यपि वास्तविक सूर्य केवल एक ही है। इस प्रकार यह माया, विशिष्ट आत्मा जो कि हममें से प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में विद्यमान है, ईश्वर की प्रतिमा मात्र है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तविक सत्ता जो कि अन्तराल में है, वह एक मात्र ईश्वर है। उसके समीप हम सभी लोग एक हैं।

इस विश्व ब्रह्माण्ड में आत्मा केवल एक है और वही हम, तुम संसार के अन्य समस्त प्राणियों के शरीर में प्रतिबिम्बित होती है और वह भिन्न-भिन्न आत्मा के रूप में प्रदर्शित होती है। परन्तु हम यह बात नहीं जानते। हमारी धारणा है कि हम सब एक दूसरे से भिन्न हैं और उससे-ईश्वर से भिन्न है। जब तक हमारी यह धारणा बनी रहेगी, तब तक संसार से दुखों का भी अन्त न होगा। यह भ्रान्ति है। इसके अतिरिक्त दुःख क्लेश और बहुत बड़ा कारण भय है।

भला एक व्यक्ति दूसरे के स्वार्थ का विघातक क्यों बनता है ? कारण वह डरता है कि मैं यथेष्ट सुख न प्राप्त कर सकूँगा। मनुष्य को भय रहता है यथेष्ट धन न प्राप्त कर सकूँगा। इस भय के ही कारण वह दूसरों को हानि पहुँचाता है, इसी से वह दूसरों को धोखा देता है, ठगता है। यदि समस्त विश्व में केवल एक मात्र सत्ता होती तो, भला इस प्रकार का भय क्यों होता ? यदि मेरे ऊपर वज्र गिर पड़े, तो मैं अपने ही ऊपर स्वयं भी गिर पड़ता हूँ, क्योंकि इस समस्त विश्व में मैं ही एक मात्र सत्ता हूं। यदि प्लेग आता है, तो वह मैं हूँ, यदि कोई सिंह आता है, तो मैं हूँ, यदि मृत्यु आती है, तो वह मैं हूँ। मैं जन्म और मृत्यु दोनों ही हूँ।

विश्व में दो सत्ताओं का अस्तित्व मानने पर भय का संचार होता है। इस तरह का उपदेश हम सदा से सुनते चले आरहे हैं कि एक दूसरे को प्रेम करो। किस लिए? हमें प्रत्येक व्यक्ति को प्रेम दृष्टि से क्यों देखना चाहिए? वह इसलिए कि मैं तथा संसार के अन्य समस्त प्राणी अभिन्न हैं। मैं अपने भाई से प्रेम क्यों करूं? इस लिए कि वह और मैं एक हूँ। इस प्रकार समस्त विश्व के सुख दुख को समान मानने में ही यह एकता है। हमारे पैरों से कुचल जाने वाले छोटे से छोटे कीड़ों से लेकर सृष्टि के बड़े से बड़े प्राणी तक पृथक्-पृथक् शरीर धारण करते हुए भी एक ही जीव है। सभी मुखों द्वारा तुम खाते हो, सभी हाथों के द्वारा तुम काम करते हो और सभी नेत्रों के द्वारा तुम देखते हो। इन लाखों शरीरों के द्वारा तुम स्वास्थ्य का उपयोग करते हो, तथा रोगों की यंत्रणा भी सहन करते हैं। जब मन में इस तरह की भावना आ जाती है और हम इसका अनुभव करने लगते हैं, तब दुखों, क्लेशों और भयों का अन्त हो जाता है।

जो अपनी पाशविक वृत्तियाँ जाग्रत करके दैवी वृत्तियों को दबा देता है, उसके मानव होने का केवल यही प्रमाण रह जाता है कि दूसरे मनुष्यों की तरह दो हाथ पैर हैं।

* * * *

हम सुख चाहते हैं। सुख का मूल्य चुकाओ; बिना चुकाये वह किस प्रकार मिल सकता है। हलुवा खाने से पहले कोयले में काले हाथ करके आग जलानी पड़ती है।

* * * *

जो संसार को दुख देने के लिए अवतीर्ण नहीं हुए, वरन् सुख की नदियाँ बहाने के लिए आये, वे मृत्युलोक में मनुष्य रूप में देवता हैं।

* * *

सत्य की साधना।

(महर्षि श्री सत्यदेव जी महाराज)

दिन के कार्य समाप्त करके रात्रि में शय्या पर शयन करते समय एक बार स्मरण कर देखो कि दिन में कोई झूठी बात कही वा मिथ्या व्यवहार तो नहीं किया है। यदि न हुआ हो तो कृतज्ञतापूर्वक भगवान को धन्यवाद देकर कहो—"प्रभो! आपकी कृपा से मैं आज सत्य की रक्षा कर सका हूँ, आप मेरा भक्ति हीन प्रणाम ग्रहण कीजिए, जिससे मैं प्रतिदिन इस भाव से आपकी कृपा का अनुभव कर सकूं।"

और यदि दिन रात में कोई झूठी बात कही गई हो तो अनुतप्त हृदय से, कातर प्रणाम से प्रार्थना करो—'प्रभो! आज मैं सत्य की रक्षा नहीं कर सका हूँ, आप मुझे क्षमा करें, भविष्य में फिर कभी असत्य के मार्ग पर नहीं चलूंगा। आप सत्य हैं, सत्य ही आपका स्वरूप है, आप सत्य के सारथी हैं, सत्य ही आपका नाम है, तब आपका नाम स्मरण करके भी हम झूठ क्यों बोल जाते हैं? हमारी रक्षा कीजिए, हमें सत्य परायण कीजिए।"

आग्रह पूर्वक कुछ चेष्टा करते करते सत्य बात कहने का अभ्यास हो जायगा। जब तक सत्य-मय स्वभाव न हो जाय तब तक होशियार रहना पड़ता है, कारण कि चिरकाल से झूठ बोलते बोलते मनुष्य एक ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं कि अनजान दशा में अनेक बार झूठ बोल जाते हैं और उनको मालूम भी नहीं पड़ता, इस कारण कुछ दिन इस प्रकार अनुशीलन व साधना करनी चाहिए।

प्रातः काल जब आप सोकर उठें, कई बार "सत्यं परं धीमहि" मन्त्र का पाठ कीजिए और सच्चे हृदय से ईश्वर प्रार्थना कीजिए कि—हे प्रभो आप हमें इस प्रकार चलाइये कि जिससे आज दिन रात में एक बार भी झूठ न बोलना पड़े।

इस प्रकार आप दिन दिन सत्य की ओर बढ़ते जायेंगे और एक दिन अपने लक्ष्य को प्राप्त करलेंगे।

पाप का प्रायश्चित्त ।

(ले० श्रीहनुमत प्रसाद 'कुसुम' सीकर)

पाप एक प्रकार की अग्नि है, जो जहाँ रहती है, उसी स्थान को जलाती है। कोई किसी की चोरी करता है जिस आदमी की चोरी की गई थी, उसे अपना धन जाने का दुख हुआ पर थोड़े समय बाद वह और धन कमा लेता है, एव चोरी के दुख को भूल जाता है, किन्तु जिस आदमी ने चोरी की थी, उसके मन पर एक प्रकार का भार जमा हो गया और आत्म ग्लानि की चिनगारी का प्रवेश हो गया। अन्तरात्मा हर घड़ी भीतर ही भीतर उस बुरे काम के लिये धिक्कारता है। यह ' आत्म-धिक्कार ' दुनियाँ में सब से बड़ी पीड़ा है । फोड़े का दर्द कुछ समय बाद अच्छा हो जाता है, किन्तु ' आत्म-धिक्कार ' से जो अशान्ति, उद्विग्नता, बेचैनी भीतर ही भीतर उठती रहती है, वह बड़ी ही दुखदायी होती है । पापी मनुष्य मदिरा आदि नशीली चीजों का इसलिए सेवन करते हैं, कि आत्म-धिक्कार के दर्द को भुलाया जा सके। उस आवाज को न सुनने के लिए बेहोश पड़े रहें। परन्तु इससे कुछ भाग लाभ ही होता। दुखती हुई आँख में अफीम डाल देने से दर्द बेशक बन्द हो जाता है । पर उस दर्द से शरीर को जो हानि होती है, उससे बचाव नहीं हो सकता। नशे पीकर या नाच, सिनेमा आदि मनोरंजन के स्थानों में जाकर थोड़ी देर मन बहलाता है, परन्तु शान्ति नहीं। मन ही मन आत्म धिक्कार का दर्द उसे चोंटता रहता है। फल स्वरूप उसके चेहरे पर डरावने भाव उड़ने लगते हैं, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

जो एक बार पाप कर चुके हैं, उन्हें उसके दर्द से छुटकारा नहीं मिल सकता ? ऐसी बात नहीं है। पश्चाताप द्वारा छुटकारा मिल सकता है। पश्चात्ताप का सबसे श्रेष्ठ मार्ग यह है, कि जिस आदमी का अपराध किया हो उसी से क्षमा माँगनी चाहिए। और जो कुछ बन सके उसका मुआविजा अदा करना चाहिए। केवल बातों से पश्चाताप नहीं हो जाता। जिसने चोरी की है, उसे चाहिए जिसकी चोरी की है, उसके सामने अपराधी की भाँति जाकर खड़ा हो और अपने दोष स्वीकार करते हुए उससे दण्ड देने की प्रार्थना करे। वह जो दण्ड दे उसे स्वीकार करे यदि वह उदारता वश बिलकुल माफ करदे तो भी योंही न बैठ जाना चाहिए। जितना धन लिया हो उतना या परिस्थिति वश ज्यादा कम हो तो उतना उस व्यक्ति को लौटाना चाहिये। यदि वह न ले तो अधिकारी पात्रों को दान कर देना चाहिये।

इतने दिनों तक वह पाप मन में छिपा रहा इस लिये मन भी गन्दा हो गया, जिस स्थान पर मृतक शरीर पड़ा रहता है, वह अपवित्र समझा जाता है, उसे शुद्ध करने की आवश्यकता होती है। मन शरीर का अङ्ग है, इसलिये शारीरिक शुद्धि के लिए उपवासैं करना चाहिये। सच्चा प्रायश्चित्त पाप की पुनरावृत्ति न करना है। परमात्मा को साक्षी देकर दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि भविष्य में ऐसा पाप फिर कभी न करूंगा।

अपने पूर्व पाप को प्रकट कर देना भी अच्छा प्रायश्चित्त है। गौ हत्या करने पर गौ की पूँछ हाथ में लेकर जगह जगह अपने अपराध की घोषणा करते फिरने का हिन्दू धर्म शास्त्रों में विधान है। कारण यह है कि जिस प्रकार का पाप एक बार किया था वैसा ही फिर भी बन पड़ने का बहुत अन्देशा रहता है। पाप को प्रकट करने पर सर्व-साधारण को मालूम हो जाता है कि इसने अमुक कार्य ऐसा किया था. अतएव वे सावधान रहते हैं और उस व्यक्ति को फिर पाप करने का मौका ही नहीं मिलता।

यदि सच्चे हृदय से पाप का पश्चात्ताप किया जाय तो उसके भयानक परिणाम से छुटकारा मिल सकता है और पाप नष्ट हो सकता है।

शेख सादीकी सूक्तियाँ

(गुलिस्ता से)

लोगों ने बिच्छू से पूछा तुम जाड़े में बाहर क्यों नहीं निकलते ? उसने उत्तर दिया—गर्मी में ही मेरी कौन बड़ी इज्जत होती है कि जाड़े में भी निकलूँ।

* * * *

किसी ने एक बुद्धिमान मनुष्य से पूछा। भाग्यवान कौन है और अभागा कौन है ? उसने उत्तर दिया—'भाग्यवान वह है जिसने बोया और और खाया' अभागा वह है 'जो मर गया और छोड़ गया।

* * *

कोई बुद्धिमान किसी मूर्ख से विवाद नहीं करता कड़ी बात सुन कर भी बुद्धिमान अपनी सज्जनता से उसके हृदय में अपने वश में कर लेता है। किसी दुष्ट ने एक भले मानस को गाली दी उससे गर्मी से जवाब दिया—तुमने मुझे जितना बुरा कहा है, में उससे भी ज्यादा बुरा हूँ।

* * * *

एक बुद्धिमान जब विद्वानों की सभा में जाता तो सदा चुप रहता। किसी ने पूछा आप सभा में बोलते क्यों नहीं ? उसने उत्तर दिया—मैं डरता हूं कि लोग मुझ से वह बात न पूछ बैठें जो मैं नहीं जानता। तुमने सुना है, कि एक सूफी अपने जूतों के तले में कील ठोक रहा था, एक सरदार ने उसकी बाँह पकड़ कर कहा—चल, मेरे जानवर के नाल भी बाँध दे।

* * * *

एक हाथ पैर कटे हुए आदमी ने एक कान खजूरे को मार डाला। एक साधु उधर से आ निकला और बोला सुभान—अल्ला ! इस जीव के हजार पैर थे। पर जब इसका काल आ गया तो एक लँगड़े लूले से भी बच कर भाग न सका।

* * * *

एक बार मेरे पास जूते न थे, मैं दुखी होकर कोफा की मसजिद में आया। वहाँ मैंने एक मनुष्य को देखा कि उसके पैर ही न थे। मैंने परमेश्वर को धन्यवाद दिया और नङ्गे पैरों पर ही संतोष किया।

* * * *

एक साधू को किसी चीज की आवश्यकता थी। एक भला आदमी उसे एक धनी आदमी के घर ले गया। साधू ने देखा कि वह होठ लटकाये, भौंहे चढ़ाये और अत्यन्त कठोर रूप धारण किये बैठा है ! साधू एक शब्द भी बिना कहे लौट पड़ा, किसी ने पूछा—'तुमने क्या कहा और क्या किया ?' उसने जवाब दिया। मैंने उसकी कृपा को उसके रूप पर ही न्यौछावर कर दिया।

* * * *

एक पीर ने अपने मुरीद से कहा मैं लोगों से बहुत परेशान हूँ। वह तो मेरे दर्शन करने के लिये आते हैं। किन्तु मेरा समय नष्ट होता है। मुरीद ने जवाब दिया कि इन लोगों में से जो गरीब है उन्हें कुछ कर्ज दे दो और जो अमीर हैं, उनसे माँगना शुरू कर दो। बस फिर कोई तुम्हें परेशान न करेगा।

* * * *

एक बादशाह किसी महात्मा से मिला और पूछा कि कभी हमारी याद भी आती है ? महात्मा ने कहा—हाँ ! आती है, पर उस वक्त जब कि खुदा को भूल जाता हूं।

* * * *

एक अन्यायी ने किसी सूफी से पूछा कि "मेरे लिये सब से अच्छी पूजा कौन सी है ? " उसने जवाब दिया कि तुम्हारे लिये दोपहर का सोना सब से अच्छी पूजा है, ताकि थोड़ी देर के लिये तो लोग तुम्हारे जुल्म से बचे रहें।

* * * *

निर्दोष कौन है ?

(श्री मंगलचन्द भण्डारी, देवास)

एक चोर चोरी करता हुआ पकड़ा गया ! सिपाही पकड़ कर उसे राजा के पास लाये। राजा ने चोर को अपराधी पाया और उस समय के दंड-विधान के अनुसार फाँसी की सजा का हुक्म सुना दिया।

जब फाँसी की तिथि निकट आई, तो राज कर्मचारियों ने चोर से पूछा—तू कुछ चाहता है ? यदि चाहता हो तो बता, जिसे हम तेरे इस अन्तिम समय में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें। चोर ने नम्रता पूर्वक कहा—भगवन् ! मेरी एक ही इच्छा है कि मृत्यु से पूर्व अपने प्रजापालक महाराज के एक बार दर्शन करलूँ। यदि आप ऐसा करा सकें, तो मुझे बड़ी शान्ति मिलेगी।

कर्मचारियों ने राजा के पास उसकी इच्छा का संदेश भेजा। राजा दयालु था। उसने एक मरते हुए आदमी की अन्तिम इच्छा को ठुकराना उचित न समझा और खुद ही उठ कर जेलखाने में चोर से मिलने चल दिया।

राजा को आया देख कर चोर ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और कहा—श्रीमन्, मैंने जैसा किया वैसा पाया। इसमें मुझे कुछ भी रंज नहीं है कि मेरी मृत्यु होगी, क्योंकि एक दिन तो मरना ही था। रंज मुझे इस बात का है कि मैं एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विद्या जानता था जो कि मेरे साथ ही लुप्त हो जायगी। राजा ने पूछा—वह विद्या क्या है ? चोर ने कहा—वह है, सोने की कृषि करना।" मैं खेतों में सोना देने वाले पेड़ उगाना जानता हूं।

राजा स्वयं इस विद्या को जानने के लिये उत्सुक हो उठा। उसने तुरन्त ही फाँसी की तिथि स्थगित करदी और चोर से कहा हमें उस विद्या को सिखाओ। जब सिखा चुकोगे, तभी फाँसी दी जायगी। चोर ने कहा—अधिक नहीं, एक मास पर्याप्त है। इतने दिनों में आप एक खेत अच्छी तरह जुतवा दीजिये।

खेत जोतने का विशेष प्रबन्ध हो गया। दिन रात हल चलने लगे। सारे राज दरबार का ध्यान उस खेत पर था। कोई मिट्टी की परीक्षा करता, कोई जोतने का ढङ्ग सुधारता, कोई नमी की जाँच करता, कोई कुछ करता तो कोई कुछ। राजा खुद दस पाँच बार उस खेत की जुताई देखने जाते, बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षा के बाद महीना पूरा हुआ, जैसे तैसे सीखने की तिथि आई। उसी दिन बड़ा उत्सव मनाया गया। सारी प्रजा कौतूहलवश देखने को उपस्थित हुई। भारी भीड़ लगी हुई थी।

नियत समय पर चोर बड़ी प्रसन्नता के साथ मुसकराता हुआ गम्भीरता पूर्वक खेत पर पहुँचा। उसने अपनी जेब में से कुछ काले-काले अत्यन्त ही छोटे बीज निकले, जो देखने में किसी जंगली घास के से प्रतीत होते थे। उन बीजों को बड़े गर्व के साथ उसने संभाल-संभाल कर हथेली पर रखा और एक ऊँची जगह पर खड़े होकर सारे प्रजाजनों को वह बीज दिखाये और कहा आप लोग देखें ! यही स्वर्ण लता के बीज है, "इन्हें मैं शाल्य देश से बड़े प्रयत्न पूर्वक लाया था और इनके उगाने की सारी विद्या सीख कर आया था। इन बीजों से जो पौधे उत्पन्न होंगे, वह सेरों सोना रोज दिया करेंगे।" इसके बाद उसने बड़े दुख के साथ एक लम्बी साँस खींची और कहा-हाय ! मैं पहले से ही चोर न हुआ होता, तो खुद ही सोने की खेती करता और पृथ्वी का कुबेर बन जाता !

लोगों ने पूछा—चोरी करने से और उन बीजों से क्या सम्बन्ध ? उसने कहा—बस यही तो कठिनाई है, इन्हें वही बो सकता है, जिसने कभी चोरी न की हो। आप में से जिसने कभी चोरी न की हो, वह आगे आवे और महाराज के इस खेत में बीज बो दे।

प्रजाजन सब चुपचाप खड़े थे। कोई ऐसा न था, जिसने कभी चोरी न की हो। जब चोर ने उधर सन्नाटा देखा तो हाथ पर बीज रखे, राजकर्मचारियों की ओर मुड़ा, पर वे भी सब काठ की मूर्ति की तरह खड़े थे। सारी भीड़ में एकभी ऐसा न था, जो अपने को निर्दोष समझता हो, कभी न कभी हर एक चोरी कर चुका था। अब राजा की बारी आई। उस सन्नाटे को चीरता हुआ चोर राजा के समक्ष पहुंचा और कहा—महाराज ! आप ही इन बीजों को बोदें। परन्तु महाराज का हाथ भी न उठा। वे भी अपने घर में अनेक बार चोरी कर चुके थे। चोर मस्तक झुकाये खड़ा था। फैले हुए हाथों पर स्वर्णलता को बीज रखे हुए थे, पर बोने वाला कोई न था।

घन्टों बीत गये। चोरों का हुजूम एक-एक करके खिसकता गया। राज दरबारी भी चले गये। राजा के सामने अकेला चोर खड़ा था, वह चरणों पर झुक गया और कहा—"महाराज! मुझ अकेले ही को फाँसी क्यों ?"

राजा विचारक था और दयालु भी। उसने मनुष्य प्राणी की आन्तरिक कमजोरियों का दार्शनिक अनुभव किया और चोर से कहा-"जा, तुझ अकले को ही मैं फाँसी नहीं दे सकता।"

मनुष्य ईर्षा से अन्धा बनता है। दूसरों के पाप तो आँखों के सामने रखता है, पर अपने पाप पीठ पीछे। दूसरों को क्षमा करदो,प्रभु तुम्हें क्षमा करेगा।

* * * *

सज्जनों के साथ नर्क में रहना अच्छा, पर दुर्जनों के साथ स्वर्ग में रहना अच्छा नहीं। क्योंकि सज्जन लोग अपने पुनीत कर्तव्यों से नर्क को भी स्वर्ग बना लेते हैं और दुर्जन लोग स्वर्ग को भ्रष्ट करके उसे नर्क बना डालेंगे।

* * * *

जो मनुष्य न मिलने योग्य चीजों को चाहता है और जो शक्ति रहित होकर क्रोध करता है। यह दोनों ही मनुष्य अपने शरीर को नाश करते हैं।

दुष्ट वृत्तियों से बचाव

[डा० रामकरणसिंह वैद्य, जफरापुर]

मनुष्य के हृदय में पाप वृत्तियां जब प्रवेश करती है. तो बहुत धीरे-धीरे आती हैं। उनका आगमन ऐसी मंदगति से होता है, कि हमें उनका पता भी नहीं लग पाता और जब वे पूरी तरह कब्जा कर लेती हैं, तब कुछ ज्ञान होता है। चूहे को पकड़ने के लिए बिल्ली बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ाती है, मछली को निगलने के लिये बगुला बहुत ही सावधानी से पाँव धरता है और जब अपने शिकार को बेखबर देखा कि चट कर जाते हैं, फिर उनके मुँह में से निकल भागना मछली या चूहे के लिए बहुत कठिन होता है।

असंख्य भले आदमी बुराइयों के शिकार होजाते हैं। पहले उनके हृदय बहुत शुद्ध थे, पापों से घृणा करते थे, किन्तु जब उनके मन में धीरे धीरे दुष्ट-वृत्तियाँ घुसने लगीं, तो वे जागरूक न थे, वे बेहोशी में पड़े रहे, इधर वे विकार मन में धीरे-धीरे बढ़ते रहे, परिणाम यह हुआ कि एक दिन उनके समस्त गुणों को हटा कर बुरे विचारों ने अपना कब्जा कर लिया, वे मन ही मन पुराने अच्छे जीवन को प्राप्त करने के लिये तड़पते हैं, पर लाचार हैं, बुरी आदतों ने उनके ऊपर अपना पूरा अधिकार कर लिया है, पूरी तरह गुलाम बना लिया है।

इसलिए जो लोग अपने जीवन को पवित्र और निर्मल बनाये रखना चाहते हैं, कि वे प्रति दिन सोने से पूर्व आत्म निरीक्षण कर लिया करें, आज क्या बुराई हमने की ? आज क्या बुरे विचार हमारे मन में आये ? इन दोनों प्रश्न के उत्तर खूब बारीकी से ढूंढने चाहिए और जो बुराइयाँ हुई हों, उनके लिये ईश्वर से क्षमा मांगते हुए दूसरे दिन सावधान रहने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। इस प्रकार यदि रोज आत्म-निरीक्षण का क्रम जारी रखा जाय, तो हम उन समस्त पापों से बच सकते हैं, जो पहले चुपके चुपके आते हैं और अन्त में नष्ट कर डालते हैं।

काटो मत, पर .....

(श्री० आनन्दकुमार चतुर्वेदी 'कुमार' छिबरामऊ)

किसी गाँव के बाहर रास्ते के किनारे एक बड़ा विषधर सर्प रहता था। उस मार्ग से निकलने वाले मनुष्यों को डस लेता था, इस कारण उसके भय से उस मार्ग से लोगों का आना जाना बन्द हो गया। संयोगवश एक दिन एक महात्मा उस गाँव में पधारे, लोगों ने उनकी सेवा-शुश्रूषा की। जब वह महात्मा उस मार्ग से जाने लगे, तब लोगों ने उनको रोका और निवेदन किया कि महाराज इस रास्ते में एक बड़ा विषधर सर्प रहता है, जो सबको काट लेता है। इस पर महात्मा ने उत्तर दिया, हम निर्भय हैं, हमारा साँप कुछ नहीं कर सकता, महात्मा उसी मार्ग से चल दिये। सर्प महात्मा को देखकर फुसकार देता हुआ उनकी ओर दौड़ा, महात्मा ने थोड़ी सी मिट्टी उठाकर मन्त्र पढ़ कर उस पर फेंकी, सर्प वहीं स्थगित हो गया। इसके पश्चात् महात्मा ने उसके पास जाकर उसको उसके पिछले जन्म का ज्ञान कराया और कहने लगे कि तू अपने पिछले जन्म में लोगों को अत्यन्त कष्ट देता था, इससे तुझको सर्प योनि मिली, अब भी तू नहीं मानता है और लोगों को कष्ट पहुँचाता है, तू सबको डसना छोड़ दे, जिससे तुझको भविष्य में अच्छी मिले। सर्प ने कहा जो आज्ञा, अब मैं भविष्य में किसी को नहीं काटूँगा।

महात्मा सर्प को उपदेश देकर चले गये, सर्प ने उस समय से मनुष्यों को डसना बन्द कर दिया। अब तो उस सर्प को सब लोग तथा बच्चे बहुत तङ्ग करने लगे, कोई उस पर पैर रख कर निकल जाता, तो कोई उसे लकड़ी से उठा कर फेंक देता, बालक उसको पूँछ पकड़ कर घसीटने लगे, सारांश यह कि सर्प अत्यन्त निर्बल हो गया; उसको अपना भोजन ढूँढ़ना भी कठिन हो गया।

कुछ दिनों बाद उस मार्ग से फिर वही महात्मा निकले तथा देखा कि सर्प अत्यन्त निर्बल तथा दीन दशा में पड़ा है। सर्प से महात्मा ने प्रेम तथा दया से पूछा-तेरी ऐसी दशा क्यों हो गई ? सर्प ने उत्तर दिया कि आपकी आज्ञा मानने से।

जिस दिन से आपका उपदेश सुना, मैंने सबको डसना बन्द कर दिया, परिणाम यह हुआ कि मनुष्य तथा बालक सभी ही मुझको तंग करने लगे, यहाँ तक कि मुझको अपना भोजन ढूँढ़ना भी कठिन हो गया। इस पर महात्मा ने सर्प से कहा कि मैंने तुझको काटने के लिये मना किया था न, कि फुसकार देने के लिये।

* * * *

आज हिन्दू समाज की ऐसी ही दशा हो गई है। धार्मिक विचारों के कारण वे अपने को हानि पहुँचाने वाले गुण्डे, बदमाश, आततायी लोगों का भी विरोध नहीं करते। फल स्वरूप हिन्दू स्त्रियों तथा बालकों का अपहरण, साम्प्रदायिक दंगों में हिन्दुओं की अधिक हानि आदि दृष्टिगोचर होते हैं। हमें किसी पर आक्रमण नहीं करना चाहिये, पर अपने ऊपर होने वाले हमलों से बचाव के लिए शक्ति-सम्पन्न जरूर रहना चाहिये, जिससे हर कोई मीठा गुड़ समझ कर चट न करने लगें।

अपने व्यक्तित्व का गौरव अक्षुण्य बनाये रहो। चुलबुलापन और बकवाद तुम्हारे व्यक्तित्व के नाश के कारण हो सकते हैं।

* * * *

कुत्ता मारा २ फिरता है, पर वह भी धैर्य रखने से मन भर भोजन पाता है। देखो ! सूखे पेड़ धैर्य रखने से हरे भरे हो जाते हैं।

* * * *

मैं परलोकवादी कैसे बना ?

(ले० श्री वी० डी० ऋषि बम्बई)

(३)

जब मैं स्वयं लेखन के प्रयोग कर रहा था, तो मुझे इङ्गलेण्ड स मि० बुश का एक तार मिला कि कुछ दिनों के लिये स्वयं लेखन के प्रयोग बन्द कर दीजिये। मैंने उनके आदेशानुसार वह प्रयोग बन्द कर दिये। कुछ दिनों के बाद मेरी स्वर्गस्थ स्त्री ने मि० बुश को संदेश द्वारा कहा, कि स्वयं लेखन के प्रयोग बन्द क्यों कर दिये हैं ? इन्हें फिर जारी कर दिया जाये। इसका कारण यह बताया गया, कि मेरी स्वर्गस्थ पत्नी मुझसे बात-चीत करने के लिये बड़ी उत्सुक है। इसलिये मैंने स्वयं लेखन के फिर प्रयोग आरम्भ किये। तब स मैं निरन्तर रूप से प्रति दिन अपनी पत्नी से बात करता हूँ। उनसे मुझे अनेक सन्देश मिले हैं। इसका कारण भी उन्होंने यह बताया, कि मेरा उन पर अगाध प्रेम है।

इस सम्बन्ध में मि० बुश ने मुझे ३० वीं मार्च को एक पत्र में लिखा—"२८ वीं मार्च की सन्ध्या को साढ़े सात बजे मुझे एक आश्चर्यजनक अनुभव हुआ। मेरी सारी पीठ जलने लगी मालूम होता था, कि कोई गर्म प्रवाही वस्तु मेरी पीठ में लगा दी गई हो। आपकी जब पत्नी आती है, तब मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ करता है। मैंने मनमें प्रश्न किया—"क्या श्रीमती ऋषिपत्नी हैं ?" इस प्रश्न के उत्तर में मेरे घुटने पर रखे हुए हाथ ने तीन ठोंके मेरे घुटने पर मारे, अर्थात् "हाँ, हाँ" मैंने उनका मन ही मन स्वागत किया और कुछ देर तक मन ही मन बात-चीत भी करता रहा। मैं मनमें उनसे प्रश्न करता और वे मुझे हाँ—न, के ठोंके मार कर बता देती थी। मैंने उनसे पूछा, कि मैंने ऋषि जी को स्वयं लेखन के प्रयोग करने की स्वीकृति देदी थी, क्या आप श्रीमती ऋषि जी बात-चीत करती हैं ? उन्होंने उत्तर में कहा, 'हां'। इस उत्तर के बाद आपका पत्र मिला। मैंने अनुमान किया, कि यह आपके पत्र के साथ ही आई हैं।

ईंगलेंड में आत्माओं को प्रत्यक्ष देखने वाले एक मीडियम को भी मेरी स्त्री दिखाई दी थी। इस सम्बन्ध में मि० बुश ने मुझे २८-११-२१ के पत्र में लिखा,—"हमारे प्रयोगों में आपकी पत्नी आयी थीं। एक मीडियम ने उसे दो बार देखा एक बार उनकी आत्मा ने बेहोश मीडियम मे प्रवेश कर कुछ बात-चीत भी की थी। मालूम होता था, कि अभी आपकी पत्नी के विचार प्राचीन रूढ़ि के हैं। मालूम होता है, कि प्राचीन रूढ़िवादी आत्माओं का उन पर अधिक दबाव है। यह एक अच्छी आत्मा हैं, किन्तु पुराने रूढ़ि के विचारों से वे मुक्त नहीं हुईं।

आपकी स्त्री के फोटो से ऐसा देख पड़ता है, कि वे सुन्दर स्त्री और सुन्दर आत्मा रही हैं। आप यह पढ़ कर चकित होंगे, कि इनके सम्वाद प्राप्ति में जो विक्षेप पड़ता है, उससे भी उन्हें लाभ पहुंचता है। आपकी पत्नी आत्म उन्नति के लिये विशेष रूप से तैयार हैं। इनमें अनेक सद्गुण हैं, किन्तु इनकी आत्मिक उन्नति जीवन काल में परिपक्व नहीं हुई थी, आप शान्ति से ध्यान करो और नये सिद्धान्त ग्रहण करने को सदैव तय्यार रहो। फिर भले ही यह नये सिद्धान्त कट्टरपन्थी हिन्दुओं को विसंगत ही क्यों न मालूम पड़े। आपके पत्नी के जो विचार जीवनकाल में थे, वही अब भी हैं। उनकी दिन-चर्या मे विशेष कोई अन्तर नहीं पड़ा। जिस देवता की पूजा वह जीवित अवस्था में करती थीं, उसी देवता की पूजा वे परलोक में भी करती हैं। परन्तु अभी इनकी आत्मा की उन्नति नहीं हुई, अचानक परिवर्तन की आशा भी न करना चाहिये। शान्ति और स्वच्छ हृदय से व्यवहार करो।"

इसके उपरान्त जब मैं सन् १९२९ और १९२८ की अन्तर्राष्ट्रीय परलोक विद्या परिषद में इगलेंड गया, तो मेरी पत्नी वहाँ मीडियमों को दिखाई दी। एक पेरिस की मीडियम ने भी उन्हें देखा। मैंने वहाँ अपनी पत्नी की आवाज ट्रम्पेट द्वारा सुनी। एक

प्रयोग में उनका फोटो भी आगया। स्वयं लेखन द्वारा मुझे अपनी पत्नी श्री सुभद्रा देवी से कितने ही संदेश प्राप्त हुए हैं, जिनसे जीवन की पिछली घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। इन संदेशों से यह पता लगता है, कि मेरी पत्नी की कितनी अधिक स्मृति है और उनका कितना अधिक प्रेम है। उनकी बताई हुई कुछ बातों का उदाहरण नीचे देता हूँ। "क्या तुम्हें उन पत्रों की याद है, जो मैं तुम्हें बंगले से लिखा करती थी?" "मैंने तुम्हें आपरेशन करवा देने के लिये कितना जोर देकर कहा था।" जिस प्रकार मैं बंगले में एकान्तवास करती थी, उसी प्रकार मुझे एकान्तवास करने की आवश्यकता है।" "मैं कहा करती थी, कि मेरे पत्र दुनिया को दिखा दो।" "जब हम लोग बम्बई रहते थे तब मैं नित्य कुछ मिठाई बनाया करते थे।" "हम लोग नित्य दूर तक घूमने जाया करते थे।" "आप मेरी इच्छा की जरा भी चिन्ता न करते थे।" मीरज में हम लोग जिस घर में रहे थे, उसमें आंगन नहीं था। विवाह के समय मैं कितने ही लोगों को पसन्द नहीं आई थी। मेरे पेट में व्याधि थी, उसका फोटो एक्सरे x Ray से बम्बई और मीरज में लिया था। मेरा स्वभाव तेज था। मैं जरा भी अपमान नहीं सह सकती थी। मैंने जो कविता बनाई थी, वह क्या आपको याद है? एक दिन मैं गुटकेश्वर मन्दिर के कुए के पास सो गई थी। क्यों आपको उन लड्डुओं की याद है, जो मैंने मीरज में बनाये थे। उसमें से एक लड्डू तो वर्षों तक ट्रङ्क में रहा था। मैं अपना समय पूजा पाठ में व्यतीत किया करती थी, इसके लिये कुछ लोग विरोध भी करते थे। मेरी पुरानी चीजें अब एक भी नहीं रहीं, दूसरे लोगों ने उन्हें फेंक दिया होगा, इत्यादि।

निश्चय भाव से सबके साथ प्रेम करो। अपने प्रेम बल से दूसरों के चरित्र को सुधारो। उन्हें ऊंचा उठाओ। तुम्हारे आचरण पवित्र होंगे तो तुम निराशों के हृदय में आशा का संचार कर सकोगे।

दुख ही सुख का पिता है

(श्री रामसेवक गुप्त 'सेवकेन्दु' सेवड़ा, दतिया)

विश्व में सुख-दुख की कोई व्याख्या नहीं है। हमारी-चार पैसों की आवश्यकता की पूर्ति ही सुख है और अपूर्ति दुख।

किन्तु मानव लोभ तथा अज्ञान के वशीभूत होकर क्षण-क्षण पर गला फाड़ कर सुख और दुख को चिल्लाता है।

सुख की गोदी में पले हुए, जीवन में आनन्द, उल्लास-सागर में क्रीड़ा करने वाले मनुष्य को जीवन की विषम परिस्थितियों का, उतार-चढ़ाव का और संसार के कटु वातावरण का क्या अनुभव होगा?

वह कूप मंडूप होगा। उसे तो जीवन के सुनहले स्वप्नों का—मीठे मीठे सुरीले स्वरों का—कोमल मखमल रेशम का—और मिठास, धन तथा यौवन का ही केवल ज्ञान होगा।

वह सुखाब के पर वाला धन तथा यौवन के गर्व में चूर होकर मदान्ध हो गया होगा, तथा पथ भ्रष्ट हो कर उस सच्चिदानन्द परमात्मा को भूल गया होगा!

किन्तु दुख में मर्मभेदिनी आह और टीसें, क्रन्दन तथा रोदन, भीषण कटुता, जीवन की कसौटी टिमटिमाती आशा और जीवन के धुंधले स्वप्न होंगे और प्रभु के ऊपर श्रद्धा करने की जी चाहेगा।

तब प्यारे दुख; आओ! तुम्हारा सानुराग आवाहन और स्वागत करें, क्योंकि तुम्हारी अठखेलियाँ उस सच्चिदानन्द प्रभु का सुन्दर रूप दिखाती हैं, और सहनशीलता तथा सन्तोष का मधुर पाठ पढ़ाती हैं। तुम सचमुच प्रशंसनीय तथा सराहनीय हो। तुम्हारा आरम्भ तीव्र कटु है, किन्तु अन्त में अत्यंत मीठा है। कड़वी औषधि ही अन्त में लाभदायक होती है और पुष्प तोड़ने वाले को ही अपना हाथ कांटों से छेदना पड़ता है।

तब दुख सुख से उत्तम है तथा दुख ही सुख का जनक है।

प्राणायाम की विधि

(ले०-पं० भोजराज शुक्ल, ऐत्मादपुर, आगरा)

मैंने सितम्बर मास के अखण्ड ज्योति में "दीर्घायु होने के उपाय" शीर्षक लेख में प्राणायाम की सुगम विधि बतलाने को लिखा था, अतएव आज मैं पाठकों को प्राणायाम की ऐसी सुगम क्रिया बतलाना चाहता हूँ, जिसके नियम पूर्वक करने से विशेष लाभ होगा। यह वचन माननीय है कि बिना गुरु के किसी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती, परन्तु श्रद्धा, विश्वास तथा साहस और उत्साह से भी कभी २ कार्य सिद्ध हो जाते हैं। जिस प्रकार एक लव्य नामक भील ने गुरु द्रोणाचार्य की मृत्तिका-मूर्ति अपने सन्मुख रख कर श्रद्धा तथा विश्वास पूर्वक उस मूर्ति में गुरु द्रोणाचार्य की भावना करके अर्चन वन्दन करते हुए धनुर्विद्या में सफलता प्राप्त करली थी, जिसके सन्मुख श्रीकृष्ण भगवान के सखा तथा भक्त अर्जुन को उसके सन्मुख नत मस्तक होना पड़ा। अतएव प्राणायाम क्रिया को यदि नियम से किया जावे, तो उसमें भी सफलता प्राप्त हो सकती है। प्राण और अपान वायु के संयोग को प्राणायाम कहते हैं, साधारणतः इसमें तीन क्रियायें होती हैं। (१) रेचक, (२) पूरक, (३) कुंभक वायु को नासिका मार्ग से धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक, शुद्ध वायु को नासिका मार्ग से धीरे २ पेट में भरना पूरक, पेट में भरी हुई वायु को पेट में ही स्थिर रखना कुम्भक कहलाता है। दाहिने नथने से श्वास चलने को पिंगला नाड़ी का चलना कहते हैं। बाँयें नथने से श्वास चलने को इड़ा नाड़ी का चलना कहते हैं तथा दोनों नथनों से जब श्वास निकलती है, तो उसको सुषुम्णा नाड़ी का चलना कहते हैं, सुषुम्णा नाड़ी मूलाधार (गुदा) से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड (रीढ़) के बीचों बीच छिद्र में होती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है, सुषुम्णा नाड़ी के बाँयी ओर इड़ा नाड़ी (चन्द्रनाड़ी) बाँयें नथने तक चली गई है, तथा सुषुम्णा के दाँयी ओर पिंगला नाड़ी (सूर्य नाड़ी) दाहिने नथने तक चली गई है। अब प्राणायाम की विधि कहता हूँ।

विधि।

जिस आसन का अभ्यास हो, उसी आसन को सुख पूर्वक लगा कर अपनी रीढ़ को तना हुआ सीधा रक्खो किसी ओर को हिले-जुले नहीं, ठोड़ी को छाती से लगा कर दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर जमाओ तथा हाथों को आगे अपनी गोद में रखलो, फिर दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिने नथने को दबा कर बाँये नथने से वायु खींच कर उदर में धारण करो, पेट में यथाशक्ति वायु को रोके रहो तथा अनामिका और कनिष्ठका अंगुलियों से बाँये नथने को भी बन्द करलो, साथ ही प्रणव (ॐ) का जप करते रहो, अथवा जो तुम्हारा इष्ट मन्त्र हो, उसे जपते रहो, इसे आन्तर कुंभक कहते हैं। वायु को पेट में थोड़ी देर रोको और फिर दाहिने नथने से अंगूठा हटा कर उदरस्थ वायु को अत्यन्त धीमी गति से बाहर निकाल कर बाहर ही रोक दो, अँगूठे से दाहिने नथने को फिर बन्द कर लो, इसे बाह्य कुंभक कहते हैं, प्रणव का जप बराबर करते रहो, थोड़ी देर बाद दोनों नथनों को खोल कर वायु धीरे २ पेट में भर लो, यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार न्यून से न्यून तीन प्राणायाम अवश्य करने चाहिये तथा धीरे-धीरे अभ्यास करके वायु निरोध करने की शक्ति बढ़ानी चाहिये, परन्तु हठ कदापि न करना, अति हठ करके वायु को रोकने से उसके कुपित हो जाने का भय रहता है, जिसके कारण हिचकी, दमा, खाँसी, आँख, कान और शिर के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। यदि प्राणायाम नियम पूर्वक सामर्थ्यानुसार खुली तथा स्वच्छ वायु के स्थान में किया जायगा, तो इससे जठराग्नि तीव्र होकर स्वास्थ्य तथा आयु की वृद्धि होगी। उपरोक्त प्राणायाम विधि के विपरीत भी रेचक, पूरक क्रियायें करनी चाहिये, अर्थात् दाहिने नथने से वायु खींच कर बांये नथने से निकाल देना चाहिये। पूरक, कुंभक

और रेचक करते समय प्रणव (ॐ) का जप दस-दस बार करते रहना चाहिए, पन्द्रह दिन अभ्यास कर लेने के पश्चात् बीस-बीस बार, तथा एक मास के पश्चात् तीस-तीस बार जप करना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः जप संख्या बढ़ाते रहना चाहिए।

अभ्यसेन मनसा शुद्धं, त्रिविद् ब्रह्माक्षरं परम्।
मनो यच्छेज्जित श्वासो, ब्रह्म बीजमनिस्मरन्॥

त्रिवित् ओङ्कार-रूपी ब्रह्म का अभ्यास मन से करे। प्राणायाम को रोक कर ब्रह्म बीज (ॐ) का स्मरण करता हुआ मन का निग्रह करे॥

अपनी शक्ति से बाहर कदापि प्राणायाम न करे, इस पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये, साधारण प्राणायाम की विधि रही है, जो कि आरोग्यताप्रद तथा आयु वृद्धि करता है।

शेखशादी की सूक्तियां।

एक मनुष्य एक बीमार के सिराहने रात भर रोया। जब दिन निकला तब रोने वाला तो मरगया, किन्तु बीमार अच्छा हो गया। जनाब, बहुत तेज तेज घोड़े गिर गये हैं, पर लँगड़े गधे ने कुशल पूर्वक यात्रा समाप्त की है। अक्सर हट्टे कट्टे पुरुष कब्र में डाल दिये जाते हैं और घायल आदमी मौत से बच जाते हैं।

* * * *

एक गरीब लकड़हारा जङ्गल में लकड़ियाँ काट रहा था, किसी ने उससे कहा-देश के बड़े बड़े लोग 'हातिम' के यहाँ खाना खाते हैं। तू भी उनका महमान क्यों नहीं होजाता? लकड़हारे ने जवाब दिया जो आदमी अपनी मेहनत से रोटी खाता है, उसे हातिम का एहसान उठाने की क्या जरूरत?

* * * *

धर्म की प्रवृत्ति

(श्री त्रिलोकनाथजी)

सब लोग चित्त का संतोष और सच्चा आनन्द प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करते हैं। किन्तु धर्म प्रवृत्ति को अपनाने से जो सुख मिलता है, वह और किसी प्रकार नहीं मिल सकता, जो ईश्वर के बँधे हुए नियमों के अनुसार सदा सत कर्म करते हैं, उनको आत्म प्रसाद का सच्चा सुख मिलता है, उनका मन विकसित पुष्पों के समान सदा प्रफुल्लित रहता है। जो लोग कह सकते हैं कि हम अपनी सामर्थ्य भर ईश्वर के नियमों का पालन करते हैं, यथा शक्ति परोपकार करते हैं, सब लोगों के साथ अनीति छोड़ कर नीति पूर्वक सुहृद-भाव रखते हैं, वही सच्चे सुखी हैं। वे अपने निर्मल चरित्रों को बारम्बार स्मरण करके परम संतोष पाते हैं। ऐसे धर्म-प्रवृत्त मनुष्य की और उसके शुभ कर्मों को चाहे, लोग न जानते हों, चाहे उसे अपनी प्रशंसा सुनने का अवसर कभी प्राप्त न होता हो, तथापि वह अपने कर्तव्य कर्मों से ही अपने को कृतार्थ करते हैं। दुखियों के दुख मिटाने, तथा किसी अज्ञान को ज्ञान मार्ग पर अग्रसर करने की एक-एक बात को स्मरण करके वे जो सुख पाते हैं, वह किसी बड़े से बड़े राज्य के मिलने पर भी दूसरे लोग नहीं पा सकते।

हमें चाहिए कि धर्म की प्रवृत्ति को अपनावें। यही प्रवृत्ति सुधार का सच्चा मार्ग है। क्योंकि मनुष्य से यदि कोई भूल हुई, तो वह तुरन्त ही सचेत कर देगी और हम अपनी भूल को अङ्गीकार करके उसे सुधारने का यत्न करेंगे। पर यदि निकृष्ट प्रवृत्ति प्रबल हुई, तो छल से उसे छिपाना चाहेंगे या अपनी भूल दूसरे के शिर मढ़ना चाहेंगे और एक अपराध को छिपाने के लिए दूसरा अपराध करेंगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि धर्म-प्रवृत्ति से आत्म प्रसाद और निकृष्ट प्रवृत्ति से आत्म ग्लानि होना अवश्यम्भावी है और यही वस्तुयें सुख दुख का मूल हेतु हैं।

एक बिलकुल सत्य घटना—

प्रेतों का आस्तित्व ।

(श्री रामरत्न वड़ोला, 'शूल' गंगोह)

उस दिन मैं पौड़ी (गढ़वाल) से गाँव लौट रहा था। शाम हो चली थी। फिर भी युवावस्था का जोश और निर्भय स्वभाव के कारण किसी प्रकार की चिन्ता न थी, हाथ में मोटा सा डंडा लेकर हमेशा की भाँति चल पड़ा, डर जैसी चीज मेरे मस्तिष्क में न थी। भूत-प्रेतों की बात निर्बल मनुष्यों की मानसिक कल्पना से बढ़ कर मुझे और कुछ प्रतीत न होती थी। इसलिये रास्ते में 'भूत मिलने' का तो स्वप्न में भी खयाल न था। सूरदास का एक पद गाता हुआ मैं उस पहाड़ी इलाके के झाड़ झंखाड़ों से भरे हुए रास्ते को पार करता हुआ उस घनघोर अन्धकार में भी प्रसन्नता-पूर्वक चला जा रहा था।

रास्ते में एक घने झुरमुट में अचानक किसी के खाँसने की आवाज आई। मुझे प्रसन्नता हुई कि शायद कोई रास्तागीर इधर से जारहा है, चलो साथ हो जायगा। खाँसने वाले को तलाश करने के लिये मैंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तो सामने वाले पेड़ के सहारे एक आदमी खड़ा हुआ दिखाई दिया। मैं उधर बढ़ना ही चाहता था, कि उस व्यक्ति ने मुझे पुकारा—भाई तेरे पास बीड़ी है? मेरी जेब में बीड़ी और दियासलाई थी, मैंने उसे दोनों चीज़ें दे दीं। बीड़ी पीता हुआ वह मेरे साथ चलने लगा। मुझे एक साथी पाकर प्रसन्नता हुई।

कुछ दूर आगे चलने पर उसने फिर बीड़ी मांगी, मैंने उसे फिर दी। उसने दियासलाई जलाई तो उसके पाँव पीछे की ओर मुड़े हुए दिखाई दिये। मैंने सुन रखा था कि भूत के पाँव उलटे होते हैं। भ्रम समझ कर मैंने कई बार आँखें मलीं और ध्यान से देखा तो सचमुच उसके पाँव उलटे थे। इस घोर घने एकान्त और निर्जन स्थान में भूत से पाला पड़ने के डर से मेरी छाती धक-धक करने लगी। एक क्षण के लिए मैं स्तब्ध खड़ा रह गया। इतने में क्या देखता हूँ कि साथी गायब है और चारों ओर आग के जलते हुए गोले उछल कूद रहे हैं और एक तरफ से गाने-बजाने की आवाज आरही है।

इस दृश्य ने मुझे भयभीत बना दिया था, फिर भी मैंने हिम्मत नहीं छोड़ी और साहस करके अपने डंडे को जमीन पर खटखटाया। अब वह दृश्य गायब हो चले थे, पर अचानक वही व्यक्ति फिर कहीं से मेरे सामने आ खड़ा हुआ। उससे बोलने की हिम्मत न होती थी। पर उसने खुद ही मुझे न डरने का आश्वासन दिया और पीछे-पीछे चले आने को कहा। उसने फिर बीड़ी मांगी, मैंने देदी। पर एक शब्द भी मेरे मुँह से न निकल सका। जब उसने दियासलाई जलाई तो मैंने देखा कि उसकी टाँगें सीधी हैं, पर पैर घुटने पर से गायब हैं। दो तीन मील मैं उसके साथ चला आया, रास्ते में कई बार उसने मुझे निर्भय रहने का आश्वासन दिया। आगे एक घाटी के पास जब हम आये तो फिर अचानक कलेजा हिला देने वाली घटना हुई। दहाड़ने की सी बड़ी भयानक एक गगनभेदी ध्वनि हुई, मैं बेत की तरह काँपने लगा। आगे देखता हूँ कि लकड़ियों का एक ढेर जल रहा है और उस ढेर में से जलती हुई लकड़ियाँ ले ले कर दो मनुष्य आपस में लड़ रहे हैं। मुझे पेड़ पर चढ़ना सूझा। प्राणों के भय ने एक कटीले पेड़ पर भी ऊंचा चढ़ा दिया।

कुछ देर में लड़ाई शान्त हुई। वही मुसाफिर फिर मेरे निकट आया और आश्वासन देते हुए आगे चलने को कहा। मैं संज्ञा शून्य हो रहा था। डर के मारे बुद्धि भी कुछ काम न करती थी, जबान बन्द थी। मन्त्र मुग्ध की तरह मैं उसके पीछे पीछे चल दिया। गाँव के निकट पहुँचने से पूर्व एक फुस-

कारता हुआ साँप मिला, जिसे उठा कर उसने एक ओर फेंक दिया।

आधी रात हो चली थी, अब हम गाँव के बिलकुल निकट पहुँच गये। अब मेरा भय दूर हुआ और जवान खुलने लगी। इस विचित्र साथी से मैंने नम्रता पूर्वक पूछा, आप कौन हैं? आगे कहाँ जायँगे? रास्ते में यह घटनाऐं कैसे हुई थीं? उसने एक सांस में ही तीनों प्रश्नों का उत्तर दे डाला—"मैं प्रेत हूँ—पूर्व जन्म का तुम्हारा मित्र हूँ—तुम्हारी रक्षा के लिये साथ-साथ यहाँ तक आया हूँ—रास्ते में दूसरी दुष्ट आत्माऐं मिली थीं, वे तुम्हें हानि पहुंचातीं, मैंने उन्हें तथा उस सर्प को हटाया और अब तुम्हें सुरक्षित पहुंचा कर वापिस जाता हूँ।" मैं उससे और कुछ कहना ही चाहता था, कि साथी अन्तर्ध्यान हो गया।

उस दिन से मैं प्रेतों के अस्तित्व पर विश्वास करने लगा हूँ और समझता हूँ कि वे केवल हानि ही नहीं पहुँचाते, परन्तु जिसे वे चाहते हैं, लाभ भी पहुँचाते हैं और रक्षा भी करते हैं।

मनुष्य का जीवन तीन वस्तुओं से पूर्ण बनता है, (१) काम करने का अभ्यास, (२) ईश्वर में अटूट विश्वास, (३) प्राणिमात्र की सच्ची सेवा।

* * * *

मनुष्यता सीखने की सबसे बड़ी पाठशाला अपना घर है। स्नेह और त्याग, क्षमा और उदारता की भावनाओं के विकाश के जितने सुन्दर अवसर अपने घर में मिल सकते हैं, उतने और कहीं नहीं मिल सकते।

* * * *

संसार में शान्ति तभी स्थापित होगी, जब बलवान लोभी होना छोड़ दें और जो निर्बल हैं, वे बलवान बनना सीखें।

* * * *

"......सत्य-सनेहू"

(पं० श्रीराम बाजपेयी)

क्वेटा का भूकम्प अभी हाल की ही बात है। बात की बात में सारा शहर मेसमार होकर एक ईंट पत्थर का ढेर बन गया। आलीशान और खूबसूरत इमारतें खाक में मिल गईं और मालो-असबाब तथा धन, जन का गहरा नुकसान हुआ। इस लम्बे चौड़े ढेर के खास स्थान पर एक कुत्ता रोज सुबह शाम आता और रोने की आवाज लगाता। लोग उसे चुचकारते पर वह उनकी तरफ देखता तक नहीं। जो खाने पीने का सामान दिया जाता, वह उसे सूंघता तक नहीं। उसे इन्सान से नफरत सी हो गई। वह पागल सा हो गया। अब लोग उसे पगला कुत्ता कह कर दुतकारने लगे। वे अब उस पर पहले की तरह तरस न खाते।

पगली हालत में भी वह कुत्ता उस स्थान पर विशेष कर जाता और सुबह-शाम धाड़ें मारता। एक दिन उस कुत्ते के उसी स्थान पर दम निकल गये।

जब खुदाई शुरू हुई तो उस स्थान विशेष पर एक लाश निकली। यह लाश करीब के गाँव के रहने वाले एक आदमी की थी। वह कुत्ता जिसका जिक्र ऊपर हो चुका है, उस आदमी का पालतू था। अपने मालिक को मकान पर न पाकर इस कुत्ते ने अपनी सूंघने की शक्ति से उस स्थान का पता लगा लिया, जहाँ वह ढेर के नीचे दबा पड़ा था। दिन और रात में कुत्ता गाँव में रहता और सुबह शाम वहाँ जाकर अपने मालिक की अलख जगा जाता। खाने पीने को तिलांजली देकर और अलख जगा जगा कर वह उस लोक में अपने स्वामी से जा मिला।

असली पता चलने पर लोग कुत्ते की भूरि-भूरि प्रशंसा करते और कहते—"जेहिकर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।"

'—तरुण'

मानसी पूजा

(ले० श्री० राम भरोसे पाठक, अध्यापक नदीगाँव)

अपने इष्ट देवों की पूजा के लिये साधक लोग भिन्न भिन्न प्रकार से आराधना करते हैं। सच्चिदानन्द परमात्मा या गणेश, शिव, दुर्गा आदि उसके विभिन्न नामों एवं रूपों की पूजा एक ही बात है। अलग अलग नाम रख लेने या अलग अलग स्वरूपों का ध्यान करने से परमात्मा की अखण्डता में कोई फर्क नहीं आता। कोई किसी देवता को पूजे तत्वतः वह ईश्वर की ही पूजा है—"सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति।"

पूजा उपासना की अनेक विधियाँ सम्प्रदायों या देश काल के अनुसार प्रचलित हैं। बाह्य दृष्टि से देखने पर इनमें विरोधाभास होता है। कई विधियाँ तो बहुत टेढ़ी मेढ़ी, कष्ट साध्य और बहुत देर में लक्ष तक पहुँचाने वाली होतीहैं। कई स्थलों पर उनमें ऐसी पेचीदगियाँ भी होती हैं, जिनमें भटक जाने पर साधना भ्रष्ट तान्त्रिकों की तरह बड़े भारी खतरे का सामना करना पड़ता है। कई साधना, बहुत समय, श्रम और धन चाहती हैं।

तत्वदर्शी योगियों ने इन सब कठिनाइयों से साधकों को बचाने के हेतु एक सार्वभौम उपासना की विधि का उद्घाटन किया था। यह विधि थी 'मानसी पूजा।' मानसी पूजा का अर्थ है, मन में ही आराधना करना। इसके लिये किसी बाहरी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रतिमा, पुस्तक, पुष्प, धूप, दीप, चन्दन, अक्षत आदि किसी की कुछ आवश्यकता नहीं होती। वास्तव में इन वस्तुओं द्वारा की जाने वाली उपासना बहुत ही आरंभ की है। जैसा बालक पहले अ, आ, इ, ई, लिखते हैं। जब मन अधिक गहरा उतरता है और सूक्ष्म लोक में प्रवेश करता है, तब तो यह वस्तुऐं उलटी ध्यान बटाने की बाधा उपस्थित करती हैं। इसी लिये योगाभ्यासी किसी अनाचार में नहीं पड़ते और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के मानसी आचारों का अभ्यास करते हैं।

योग शास्त्र बतलाता है, कि आपको जो अभीष्ट हो उसकी मानसी पूजा कीजिये, आत्म कल्याण के लिये ईश्वर की आराधना करते हैं, या उसके किसी गणेश, सूर्य आदि प्रतिबिंब को अपना आराध्य बनाया है, तो उसका साकार निराकार जैसा कुछ रूप आप ठीक समझते हैं, अपने हृदय में धारण कीजिये, उसी रूप की स्पष्ट कल्पना अपने लोक में कीजिये चित्त को रोक कर बार ध्यान करने से वह मूर्ति स्पष्टतः अपने भीतर प्रतिष्ठित हो जायगी। सूक्ष्म नेत्रों से उसके दर्शन अच्छी तरह किये जा सकेंगे।

अपने इष्ट देव के ध्यान में स्थित होकर उन्हीं में अपने को तन्मय करने का प्रयत्न कीजिये। मानसी पूजा के लिये धूप, दीप आदि बाहरी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह इष्ट देव आराध्य है जो आत्मा आराधन या आराधना की सामिग्री। जैसे यज्ञ में आहुत डालते समय सामिग्री को अग्नि में डाल कर उसी के स्वरूप में मिला देते हैं, और आहुत के साथ कहते हैं-। 'इदन्नमम' अर्थात् यह यह मेरा नहीं है। इसी प्रकार आप इष्टदेव रूपी यज्ञ में अपनी आत्मा को समिधा रूप में जलाकर दीजिये और भावना कीजिये कि इसमें मेरा कुछ नहीं है। जब अपने 'आपे' को भुला कर हम तदाकार होते हैं तो दो वस्तुऐं नहीं रहतीं। या तो इष्टदेव ही रहजाता है, या आत्मा ही, बात एक ही है। यही तदाकारता सच्ची उपासना है इसी, को अद्वैत साधन कहते हैं।

संसार में आपका जो भी लक्ष हो उसीकी मानसी पूजा कीजिये, उसी में तदाकार हो जाइये, इसके लिये किसी आसन, स्थान, समय आदि का प्रतिबंध नहीं है। जैसी भी स्थिति में रहें, अपने को अपने इष्ट-उद्देश्य में पिरोते रहिये। बस आपकी पूजा सफल हो जायगी और इच्छित फल मिल जायगा।

शिखा के लाभ

(वि० रामस्वरूप 'अमर' साहित्य रत्न,)

(१)

शिखा शब्द "शिख् जाने अर्थ धातु से बनता है जिसका अर्थ शिखा यानी ब्रह्मरन्ध्रस्थ बालों के द्वारा जीवन शक्ति का आना और जाना बतलाया है। "तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्रविशत" इसमें बतलाया है, कि मनुष्य शरीर में ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा मार्ग द्वारा परमात्मा का प्रवेश होता है। जिसे परमात्मा को जीवात्मा कहते हैं। यही नियम है, कि मनुष्य या प्राणी मात्र गर्भ स्थिति में रहता है, तो प्रथम शिर की रचना होती है, बाद में दूसरे अङ्ग प्रत्यङ्गों की। हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों का यह अनुभूत सिद्धान्त है, कि प्राणों का गमन यदि ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से हो तो अवश्य इस संसार में आवागवन् छूट जाता है, क्योंकि "गो-गोचर जहँ लग मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।" अब जहाँ तक मनकी दौड़ है वहाँ सर्वत्र माया भासित होगी। मायासे "आब्रह्म भुवना लोकाः पुनरा वर्तिनोऽर्जुन" के सिद्धान्त से आवागवन तो निश्चय ही है। सब वर्णों यानी अङ्गों में "मुखं श्रेष्ठतमं मतम्" माना है। शिखा रखने का रहस्य मय कारण यह है, कि जो मस्तक की माँस पेशियाँ हैं, वे प्रायः बहुत कोमल होती हैं। उन में जितनी शीघ्रता से सर्दी और गर्मी प्रवेश कर सकती है, उतनी किसी स्थान में नहीं कर सकती सिक्ख लोग जटा (शिखा) आदि पञ्च केशों के रखने से कितने स्वस्थ और सुन्दर प्रतीत होते हैं? यह बाल वीर्य रक्षा के लिये अत्युपयोगी साधन हैं। बारम्बार मुण्डनादि कृत्यों से मनुष्य की विषय-वासनायें उत्तेजित हो उठती हैं और विषय वासना ही अधोगति का कारण है। नारी समाजकी ओर दृष्टि कीजिये, उन्हें केश रखने का कितना चाव है, वही उनकी शिखा है जिसकी बदौलत नारियों में अपूर्व सौन्दर्य्य, सहन शीलता और कार्यक्षमता को विशेषता पुरुषों से अधिक पाई जाती है। हमारे ऋषि-मुनि शिखाधारी होने के कारण ही प्रायः दीर्घजीवी होते थे, क्योंकि उनके वीर्य की रक्षा और इन्द्रियों की शांति केशों के द्वारा सरलता से हो जाती थी। आजकल का नर समाज विलासिता की ओर इतना अग्रसर क्यों हो रहा है? केवल केशों की ओर ध्यान न देने देने से! शिखा की गति प्रायः ऊर्ध्व हुआ करती है, जैसे दीपक की शिखा को लीजिये। जिस प्रकार दीपक अपनी शिखा के द्वारा धुयें के रूप में अपनी कालिमा को फेंकता जाता है, उसी भाँति यह जीवात्मा रूपी दीपक भी अपनी शिखा द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से सब पाप रूपी धुयें को निकालता हुआ अन्त में अपने यथेष्ट स्थान को पहुँच जाता है। इसी शिखा के द्वारा "चिद्रूपिणि! महामाये, दिव्य तेजः समन्विते। तिष्ठदेवि! शिखा बन्धे तेजो वृद्धि कुरुष्व मे।" तेजो वृद्धि का आवाहन किया जाता है। शिखा बाहर की सर्दी या गर्मी को मस्तिष्क में प्रविष्ट नहीं होने देती क्योंकि केशों में ऊन के सभी गुण विद्यमान होते हैं। जैसे ऊनके ऊपर पानी कम ठहरता हैं, वैसे ही बालों में भी पानी नहीं ठहर पाता ऊन के तन्तु जैसे पशु पक्षियों की शारीरिक-गर्मी को बाहर नहीं निकलने देते वैसे ही हमारे बाल भी शारीरिक गर्मी और सरदी का बचाव करते रहते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि बाल रखने से बल, आयु आरोग्य की वृद्धि और न रखने से इनका ह्रास होता है। वेद मन्त्रों में देखिये—"दीर्घायुष्टवाय बलाक वच से। शक्त्यै शिखायें वषट्" इत्यादि पहिले कैदियों को सब से बड़ा दण्ड उनका मुण्डन कराना ही समझा जाता था, क्योंकि उनमें कष्ट सहने की वह शक्ति नहीं रहन पाती थी, जिससे वे यातनायें भोग सकें। मुण्डन हो जाने से अपराधी अपना दोष भी शीघ्र स्वीकार कर लेते थे। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। शिखा आर्य धर्म का एक चिह्न भी है। जैसे आज कल प्रत्येक संस्था अपनी-अपनी समाज का अलग २ चिह्न रखती है, उसी प्रकार हमारे समाज का शिखा प्रधान चिन्ह है। एक झण्डे के लिए जैसे सेनानी अपने प्राणों की बाजी

लगा देता है वैसे ही नर समाज के प्रधान अङ्ग मस्तिष्क-राज्य की ध्वजा शिखा की रक्षा में कोई कसर नहीं रखना चाहिये। इसी शिखा और धर्म की रक्षा के लिये शिवाजी, गोविन्दसिंह जी जैसे वीरों ने अपने प्राणों की बाजियाँ लगा दी थीं। अगर "शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सबकी" इसमें कोई सन्देह न होता और आर्य जाति अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को खो बैठती। विशेष तो मैं एक अपनी "शिखा-सन्देश" पुस्तक में लिख रहा हूँ जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। जिसमें प्रसिद्ध महापुरुषों के विचारों का समन्वय और चयन किया गया है। 'देहो देवालयः प्रोक्तः' यानी देह एक देवालय है जिसमें जीवात्मा रूपी देव का निवास है, उसका निशान शिखा है जैसे दूसरे देवालयों में ध्वजादि निशान हुआ करते हैं वैसे ही हमारे देह-देवालय का शिखा एक निशान है, जिसकी रक्षा हमें जीते जी करना है और इसी के द्वारा अन्त में आवागमन से छुटकारा पाना है।

—क्रमशः

दानी होने से पहले विचारवान होना आवश्यक है, बिना विचारे दान देना धन का दुरुपयोग करना है।

* * * *

अनेक धर्माचार्य सच्चे तो होते हैं पर उनमें उदारता की कमी रहती है। उनसे बढ़कर सख्त मिजाज और झुक्खड़ दूसरा न होगा।

* * * *

वही व्यक्ति विवेक मय है जो भविष्य से न तो आशा रखता है और न उससे भयभीत होता है।

* * * *

जो मनुष्य कभी गलती नहीं करता वह संसार में कुछ भी कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

* * * *

बुरे प्रभावों से बचना उनका प्रतिकार करना, इसी का नाम संयम है, जो मनुष्य में योग्यता पैदा कर उसे प्रभाव शाली बनाता है।

साधकों के पत्र।

कई मास पूर्व 'मैं क्या हूँ' पुस्तक प्राप्त हुई थी। गत एक मास से अभ्यास आरम्भ किया है। इस समय में मेरे मन को अत्यन्त शान्ति प्राप्त हुई है, आगे और भी अधिक लाभ होने की मुझे आशा है।

(लक्ष्मीकुमार नगीना)

(२)

आपकी भेजी हुई 'सूर्य-चिकित्सा-विज्ञान' और 'प्राण चिकित्सा-विज्ञान' दोनों पुस्तकें प्राप्त हुईं। प्राण चिकित्सा-विज्ञान का महत्व मेरे से वर्णन नहीं हो सकता। पुस्तक क्या है गागर में सागर है। आपने इन पुस्तकों की रचना करके मनुष्य जाति का बड़ा उपकार किया है, अभ्यास कर रहा हूँ साथ ही लाभ भी हो रहा है।

(मंगलचन्द भंडारी, देवास)

(३)

पर काया प्रवेश मिली, मैस्मेरेजम का ऐसा सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ किसी भाषा में अब तक मेरे देखने में नहीं आया। अभ्यास प्रारम्भ कर दिया है।

(विद्याविनोद शुक्ल, पिथौरा)

(४)

'प्राण-चिकित्सा' प्राप्त हुई, उसके अनुसार प्रयोग करने से सफलता मिल रही है।

(रणजीतराम आर्य, बड़वानी)

(५)

आपके यहां से 'पर काया प्रवेश' का अभ्यास सीखा था। उसके द्वारा अनेक व्यक्तियों के जीवन में भारी परिवर्तन कर चुका हूँ। कई पशु, मनुष्य बन गये हैं।

(जीवानन्द सन्यासी, हरिद्वार)

कर्तव्य-पालन ।

[पंडित अनन्तराम दुबे 'प्रभात' सिवनी]

आप एक विद्यालय खोलते हैं, विद्यालय खोलने के पीछे आपका उद्देश्य रहता है कि लोग वहाँ अच्छी अच्छी शिक्षाएँ प्राप्त करें। विद्यार्थियों का भी यही उद्देश्य रहता है कि वे वहाँ उच्च विद्या ग्रहण करें। पाठशाला का कार्य सुचारु रूप से चले, इस लिये कुछ नियम बना देते हैं और उन नियमों का पालन करना प्रत्येक के लिये अनिवार्य सा हो जाता है। जो उन नियमों का उल्लंघन करता है, उसे दंड दिया जाता है और जो नियमों का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करता है, वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है अर्थात् उसके ध्येय की पूर्ति हो जाती है।

ठीक इसी प्रकार सृष्टि का हाल है। ईश्वर ने किसी विशेष उद्देश्य से इस सृष्टि की रचना की है। ईश्वर चाहता है कि प्राणी इस जग में अच्छे अच्छे कार्य करे और अन्त में परम विकाश मोक्ष को प्राप्त हों। संसार के प्रायः सभी मतों (धर्मों) का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही है। अपनी सृष्टि का कार्य ठीक रीति से चले, इसलिये ईश्वर ने कुछ नियम बना दिये हैं, जिनका पालन करना प्रत्येक जीवधारी का 'कर्तव्य' है। जिसने भी, जरा भी, अपने कर्तव्यों की अवहेलना की कि उसे प्रकृति के दंड का भागी बनना पड़ा। जो इन ईश्वर दत्त नियमों का पालन करते हुए अपना कार्य करता है, उसे ही सफलता मिलती है। उसे अपने जीवन के प्रधान उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। सारांश यह कि जिन कार्यों के करने से 'निर्वाण' प्राप्त हो जावे, उनका करना मनुष्य का 'कर्तव्य' है और इसके विपरीत 'अकर्तव्य'।

कर्तव्य और अकर्तव्य की जांच करने के लिये सब से सुगम तरीका एक ही है। हमें ईश्वर ने ऐसी शक्ति प्रदान की है, जो हमें भले बुरे अथवा धर्म अधर्म का ज्ञान कराती है। हमारी प्रवृत्ति की वह बुरे कर्मों से छुड़ा कर सुकर्मों में लगाती है। जब चोर चोरी करने जाता है, तब वह शक्ति उसे रोकती है—'यह कार्य मत करो, यह अन्याय है'। पर प्रायः लोग इस पुकार पर कान नहीं देते और इस तरह ईश्वरीय नियमों को तोड़ दुख भोगते हैं। जिन कार्यों को करने की हृदय स्वीकृति दे, वही मनुष्य का कर्तव्य अथवा धर्म है और हृदय जिन कार्यों को करने की सलाह न दे, उसे नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे अधर्म या अकर्तव्य हैं।

जो मनुष्य अपने कर्तव्यों का यथोचित रीति से पालन करता है, उस सदाचारी मनुष्य को कभी भी कोई दुख नहीं सहना पड़ता, क्योंकि वह ईश्वर की इच्छानुसार कार्य करता है, इसलिये ईश्वर सदैव उस पर दया दृष्टि रखते हैं। प्रायः ऊपर से देखने पर सदाचारी पुरुष निर्धन और दुखी मालूम होते हैं, पर वास्तव में यह बात नहीं है। सदाचारी पुरुष में असाधारण दैवी शक्ति होती ही है। जिस पुरुष में वह दैवी शक्ति है, वह दुखी कैसा? सदाचारी मनुष्य निर्धन तो हो ही नहीं सकता। सच पूछा जाय, तो सच्चा खजाना सदाचारी ही के पास है। उसका वह खजाना कभी खाली नहीं होता, उसे खर्च करने पर बढ़ता ही जाता है। सदाचारता के कार्य करने का फल कितना मीठा होता है, यह तो सदाचारी पुरुष ही जानता है। जरा से भी सदाचारिता के विचारों का चिन्तन करने से ही आत्मा को अपार शांति और शीतलता प्राप्त होती है। दुष्टों को सदा अपने दुश्मनों का भय बना रहता है कि कहीं कोई हमारा अनिष्ट न कर दे, पर सदाचारी के पास यह सब बातें कहाँ, वहाँ न तो कोई दोस्त है, न दुश्मन। उसके लिये तो सारा संसार एकसा है।

सदाचार से प्राप्त होने वाला सुख स्थायी और मूल्यवान है, इसलिए 'कर्तव्य पालन' रूपी कीमत चुकाने पर ही मिलता है, किन्तु झूंठी और नकली चीजों से सारा बाजार भरा पड़ा है।

स्वर योग से रोग निवारण

(श्री० नारायण प्रसाद तिवारी 'उज्ज्वल' कान्हीवाड़ा)

लिङ्ग शौचं पुरा कृत्वा गुद शौचं ततः परम् ।
गृहीत्वा जल पात्रं तु विण्मूत्रं कुरुते यदि ।।

प्रथम मूत्र स्थान की शुद्धि करके फिर गुदा की शुद्धि करे तथा जल का पात्र लेकर मल मूत्र की शुद्धि करनी चाहिये ।

यह लिखा जा चुका है कि दक्षिण स्वर में मल तथा वाम स्वर में मूत्र त्याग करना चाहिये, इसके विशेष नियम इस प्रकार हैं ।

मूत्र त्याग करते समय तक ऊपर नीचे के दांतों को खूब दबाकर रखो तथा अण्डकोष को ऊपर उठाकर रखो इससे दो लाभ होंगे । दांतों को दबा कर रखने से दांतों की बीमारियाँ न होंगी, जिनको दांतों में दर्द की शिकायत रहा करती हो प्रयोग का अनुभव करें, दूसरे यह कि अण्डकोष का रोग न होगा और जिसे यह रोग आरम्भ हुवा हो इस प्रयोग को करके लाभ उठावें, इससे शक्ति का ह्रास भी नहीं होता ।

अपान वायु की गड़बड़ी अथवा मल विकार के कारण ही अनेक रोग हुआ करते हैं । गुदा से नाभि-तक अपान वायु का स्थान है, नाभि समान वायु का तथा नाभि से ऊपर जो वायु हम ग्रहण करते हैं, प्राण वायु है ।

शौच करते समय तर्जनी अथवा मध्यमा अँगुली से गुदा के भीतर का स्थान जल से स्वच्छ करना चाहिये, अन्दर का मल द्वार घोंघा आकृति है, उसके आस-पास यदि कोई पपड़ी रह जाती है तो अपान वायु अशुद्ध होती है, किन्तु इस रीति से सरलता पूर्वक सफाई की जा सकती है, यद्यपि पाठक गण इसे घृणित अथवा कठिन क्रिया समझेंगे, किन्तु दो तीन दिन के अभ्यास से यह क्रिया सरल प्रतीत होगी, इसे मल शोधन क्रिया कहते हैं ।

गर्मी से वायु फैलती है यह Science विज्ञान का मामूली नियम है और फिर वायु ऊपर को— उठती है । इसी प्रकार जब मल साफ नहीं होता तो गर्मी से वायु ऊपर उठती है, जिससे दिल में धड़कन Heart palpitation, सिर दर्द acidity आदि की बीमारियें होती हैं । हां मल शोधन करते समय अँगुली तथा गुदा द्वार में तेल लगा लेना ठीक होगा, जिससे नख लगने का भय न रहे । इस मल शोधन क्रिया से. कब्ज, अर्श, भगन्दर खट्टी डकारें आने की शिकायतें दूर होती हैं । मल साफ होता है, इस मल शोधन के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है । पाठक गण इस क्रिया को करके स्वयं उससे लाभ अनुभव करें ।

शौच क्रिया के पश्चात् हाथ, मुँह धोकर मुँह में जितना पानी भर सको भरलो और पानी को मुँह में ही रोक कर हथेली में ठंडा जल भर खुली हुई आंखों पर खूब छिड़को, पांच, सात बार ऐसा करने के बाद मुँह में भरा हुवा पानी फेंकदो, इसी प्रकार भोजनान्तर भी यही क्रिया करनी चाहिये, या कि जब कभी भी मुँह धोते हो यह क्रिया कर लेना आँखों को अत्यन्त लाभदायक है । इस क्रिया से आँखों की बीमारी नहीं होती और ज्योति ठीक रहती है ।

भोजन:—भोजन से शरीर बनता है । यह सभी जानते हैं, किन्तु यह जानते हुए भी मनुष्य भोजन के विषय में बहुत ही लापरवाह रहता है, कहावत है Live not to eat lent eat to live. अर्थात् भोजन के लिये जीवन नहीं है, वरन् जीवन के लिये भोजन है । कुछ भी खाद्य—अखाद्य का विचार· किये बिना भोजन करना स्वास्थ्य के लिये अहित कर होता है । सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है ।

सब स्वादिष्ट वस्तुऐं स्वस्थकर होती हैं, यह नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह कहा जा सकता है कि जो स्वस्थ रहना चाहते हैं, उन्हें पूर्ण शाकाहारी होना चाहिये, माँसाहार से अनेक रोग उत्पन्न होते

हैं, यह बात अब बड़े-बड़े डाक्टर भी स्वीकार करने लगे हैं। मैं यह लिख चुका हूँ कि सूर्य नाड़ी में भोजन करना उत्तम है, इस प्रकार किया हुआ भोजन जल्दी पचता है, बाजारू पेटेंट दवाइयों से क्षणिक पाचन शक्ति चाहे ठीक मालूम हो, किन्तु स्थायी लाभ नहीं हो सकता, जिनकी पाचनशक्ति कमजोर हो, कब्ज की शिकायत रहा करती हो, उन्हें पाँच सात दिन इस प्रकार भोजन करके देखना चाहिये।

सूरज में भोजन करे, चन्द्र में पीवै पानी।
पालन इसका जो करै, राखे अटल जवानी॥

भोजनान्तर कुल्ली करने का नियम मैं ऊपर लिख चुका हूँ, पश्चात् वीरासन बैठ कर दस-पन्द्रह मिनट तक नोंकदार कंघी से सिर के बालों पर इस प्रकार फेरना चाहिये, कि सिर में चुभें, आरम्भ में इतने समय तक वीरासन बैठने में कष्ट होगा, अतएव पहले एक या दो मिनट ही बैठना चाहिये, क्रमशः अभ्यास बढ़ाना चाहिये, इस क्रिया से अर्श तथा वात का नाश होता है, जिसे अर्श तथा वात का आरम्भ है उसे इससे बहुत शीघ्र लाभ प्रगट होगा, तथा कुसमय बाल नहीं पकेंगे, गाढ़ निद्रा आवेगी और स्वप्नदोष न होगा, मस्तक के रोगों का नाश होगा। स्वास्थ्य के लिये निद्रा भी उतनी ही आवश्यक है, जितना भोजन, गाढ़ निद्रा मनुष्य को सुस्थ तथा दीर्घजीवी बनाती है।

सीधी करवट लेने से Lever पर जोर पड़ता है, जिससे पाचनशक्ति में रुकावट होती है, इसलिये भोजन पचाने के निमित्त दक्षिर स्वर चलाने की आवश्यकता है, अतएव बाँई करवट लेटना ही उत्तम है, अपितु रात्रि में जितने अधिक समय के लिये पिंगला स्वर चले उतना ही उत्तम है, जैसा कि कहा जा चुका है कि—

दिन में जो चन्दा चले रात चलावे सूर।
तो यह निश्चय जानिये, प्राण गमन है दूर॥

किसी किसी का यह मत है, कि बांई करवट लेटने से दिल Heart दबेगा, तथा उसकी चाल में कमजोरी होगी, किन्तु यह भ्रम मात्र है, क्योंकि पाचन क्रिया ठीक रहने से हृदय की गति कदापि शिथिल नहीं हो सकती, मल-मूत्र त्याग करने के कुछ और भी नियमों का पालन करना हितकर होगा।

सूर्य, चन्द्र अथवा हवा जिस ओर से चल रही हो, उस ओर मुँह करके मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये, सूर्य की ओर त्याग करने से शिर रोग तथा चन्द्र और हवा की ओर त्याग करने से मूत्राशय के रोग होने की सम्भावना है, खड़े होकर पेशाब करने से रीढ़ में कमजोरी आती है, कदाचित पाठक पाश्चात्य सभ्यता की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे, किन्तु जलवायु पर भी बहुत से नियम निर्भर हैं, यह नहीं भूलना चाहिये।

पूर्व की ओर से जब वायु का प्रवाह हो उस ओर से वायु जोर से नहीं खींचना चाहिये, इससे कफ का जोर बढ़ता है, सारांश जिस ओर से भी वायु का प्रवाह हो उस ओर मुँह करके दीर्घ श्वास नहीं लेना चाहिये, क्योंकि हवा में कई प्रकार के कीटाणु उड़ा करते हैं और श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश कर रोग उत्पन्न करने का भय रहता है, पाठकों ने अनुभव किया होगा कि हवा की ओर पीठ करने से ठंडक मालूम होती है। मल-मूत्र तथा छींक का वेग कदापि नहीं रोकना चाहिये।

दूसरों की सहायता और सेवा करना बड़ी उत्तम बात है, पर यह तभी हो सकता है, जब तुम स्वयं सच्चे और पवित्र बन जाओ।

* * * *

दुनियां के भाग्य को रोक कर नष्ट करने वाले दो ही कारण हैं, पहला अभिमान, दूसरा घृणा।

* * * *

भाग्यवान वह है, जिसका धन उसका गुलाम है, अभागा वह है, जो धन का गुलाम है।

* ❀ ❀ ❀

ईश्वर की उपासना

(ले०—श्री धर्मपालसिंहजी, बरला)

बहुधा लोगों के मन में जो कर्म फिलासफी के मानने वाले हैं, यह विचार पैदा हुआ करते हैं कि कर्म के बिना कुछ नहीं मिलता, हम जैसा अच्छा या बुरा कर्म करते हैं उसका वैसा ही फल मिलता है। दूसरे ईश्वर न्यायकारी है, वह भी कर्म फल में कोई परिवर्तन नहीं करता, फिर बेकार क्यों उपासना में समय लगाया जाय? उपरोक्त दलीलको देखकर जब हम संसार में देखते हैं कि एक मूर्ख भी बिना प्रयोजन किसी कार्य में हाथ नहीं डालता और बुद्धिमानतो सदैव खोज कर करतेहैं, तो यह आवश्यक है किइस रहस्य पर कुछ विचार किया जाय। 'ज्योति' के पाठकों को इससे पूर्व कि इस विषय पर विचार किया जाय, यह जान लेना अति आवश्यक होगा कि उपासना शब्द का क्या अर्थ है, उपासना का पास बैठना, ईश्वर शब्द का अर्थ सर्वेश्वर या ऐसी शक्ति जो सत-चित-आनन्द हो। अब यह प्रश्न होता है कि क्या ईश्वर हम से दूर है, जिससे हमें पास बैठने यानी उपासना की जरूरत हुई। दूरी तीन प्रकार की होती है। स्थान सम्बन्धी, जैसे सूर्य हम से करोड़ों कोस दूर है। दूसरी—(काल-सम्बन्धी) जैसे महाभारत हम से पांच सहस्र वर्ष पहिले हुआ। तीसरी—(ज्ञान सम्बन्धी) जैसे बहुत बार हम अपने को भूल जाते हैं या समीप की वस्तुओं को भ्रान्ति के कारण नहीं देख सकते। उपासना शब्द को सिद्ध करने के लिये अब हमें विचारना चाहिये कि ईश्वर में और हम में कौनसी दूरी है, चूंकि ईश्वर सर्व व्यापक और अपरिमित है, इसलिए-स्थान दूरी नहीं हो सकती, वह नित्य है, अतएव काल दूरी भी उसमें नहीं है। अब रही ज्ञान दूरी-सो यह प्रत्येक मनुष्य को मानना पड़ता है, क्योंकि हर मनुष्य को ईश्वर का पूर्ण परिचय नहीं है, अब हम यह जान गये कि ज्ञान दूरी है, तो हमें ईश्वर के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ही उपासना की जरूरत है। अब यह ध्यानपूर्वक देखिये कि संसार में हम कब किसी की उपासना करते हैं। जब किसी व्यक्ति को सर्दी लगती है, तो वह गर्मी के लिए तथा उससे बचने के लिए अग्नि और वस्त्र की उपासना करता है और जब गर्मी की अधिकता से प्यास कष्ट देती है, तो जल की उपासना करता है! इससे यह स्पष्ट विदित हो गया कि जब हमें किसी वस्तु की उपासना से कष्ट मालूम होता है, तो हम दूसरी प्रतिकूल वस्तु जो हमारे अनुकूल होती है की उपासनाकरते है, जो हमारे कष्ट को आनन्द से बदल देती है। अब यह बात साफ होगई कि उपासना दुःख से बचने और सुख को प्राप्त करने का गरज भी आती है। पाठक गण अब यह विचारने की आवश्यकता हुई कि हमें दुःख किस वस्तु से मिलता है। संसार में हम दो शक्तियों को काम करते देखते हैं एक ज्ञात दूसरी अज्ञात जो वस्तुऐं हमें इंद्रियों द्वारा अनुभव होती है वह सबकी सब अज्ञात हैं।

इन शक्तियों के समूह को प्रकृतिके नाम से पुकारा जाता है। हमारी कामनायें उत्पन्न होकर जो कि हमारे दुःख का एक ही कारण हैं, इसी प्रकृति से पैदा होती हैं, यानी दुःख का कारण प्रकृति है। परन्तु क्या कारण है कि हम ज्ञाता होते हुए भी इसके सेवक हो जाते हैं? बात यह है कि हमारा ज्ञान निर्बल है और प्रकृति (शक्तियों का समूह) नाना प्रकार के भेष बदल कर हमारे सामने आती है, यद्यपि प्रथम दशा में हम इसे अस्वीकार भी करे चुके हों, परन्तु नूतन दशा में फिर अपना लेते हैं, जैसे किसी व्यक्ति ने कोई फल खाया। पेट में जाकर, मल मूत्र, रुधिर, मांस, मज्जा, वीर्य* इत्यादि की दशाओं में परिवर्तन हो गया। हमें अब इससे घृणा होगई,परन्तु जब इन्हीं वस्तुओंसे पृथ्वीके नीचे से दूसरे फल पैदा होकर आते हैं, तो हमारा मन जो प्रथम घृणा कर चुका था, फिर ललचा जाता है, वास्तव में हम प्रकृति के मूल कारणों से जानकार नहीं। इसी कारण न तो इससे इच्छा पूरी होती है और न दुःख ही दूर होता है, अब अच्छी तरह

समझ में आ गया कि हमारे दुःखों का कारण प्रकृति के भेद को न जानना है, संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसे प्रकृति का पूर्ण ज्ञान हो। प्रकृति का ज्ञान न होने तथा उसकी विरुद्धि शक्ति को न जानने के कारण हम दुःख उठा रहे हैं, इस लिये जरूरत है कि हम ऐसी शक्ति की उपासना करें, जिसे प्रकृति का पूर्ण ज्ञान हो और इसके प्रतिकूल गुण वाली हो।

प्रकृति सर्व व्यापक (अपरिमित) और जड़ , प्रकृति को वही जान सकता है, जो सर्व व्यापक और ज्ञाता हो, सो सर्व व्यापक ज्ञाता एक परमात्मा है, उसी को प्रकृति का यथार्थ ज्ञान है। परमात्मा आनन्द स्वरूप है, प्रकृति के व्यापक और नित्य होने से जीवात्मा सदैव प्रकृति से सम्बन्ध रखता है, जिससे वह दुःखी रहता है, दुःख रूप प्रकृति की विरुद्धि शक्ति परमात्मा के सिवा जो आनन्द रूप है, जीव किस की उपासना से दुःख से छूट सकता है, इस कारण परमात्मा की उपासना करनी योग्य है, जब परमात्मा के ज्ञान को जान लेंगे, तब हमें पापों से घृणा हो जायगी। यह जो दलील होती हैं, जब ईश्वर उपासना से किए हुए कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, तो क्या लाभ। परन्तु यह सत्य है कि ईश्वर उपासना से पाप का फल भोगते हुये भी कष्ट नहीं होता, क्योंकि दुःख को अनुभव करने वाला मन परमात्मा की उपासना में लगा होता है।

चुप रहना एक कला ही नहीं, वाक् प्रवीणता भी है।

*　　*　　*　　*

चार बातें नहीं भूलनी चाहिये (१) बड़ों का आदर करना। (२) छोटों को सलाह देना। (३) बुद्धि मानों से सलाह लेना। (४) मूर्खों से न उलझना।

*　　*　　*　　*

यदि मनुष्य सीखना चाहे, तो उसकी प्रत्येक भूल उसे कुछ न कुछ सिखा देती है।

गद्य काव्य

प्रभु ! दर्शन दीजिए !

(श्रीमती सावित्री देवी तिवारी, जयपुर)

प्रभो ! उस दिन आपको खूब ही रोकर बुलाया, घन्टों गिड़गिड़ाई, हिचकियाँ बँध गईं, दर्शन की आशा से आँखें उमड़ आईं। पूजा की थाली में हृदय-पुष्प रखा हुआ था। प्रतीक्षा में युग बीत गये परन्तु प्रभु ! आपके दर्शन न हो सके।

भगवान् ! क्या करूँ ? कैसे करूँ ? संसार सागर की प्रचंड लहरें मेरी आत्मा को इधर से उधर बहाती फिरती हैं, एक चट्टान से टकरा कर लौटती हूं तो दूसरेसे टकराना पड़ता है। यह निर्बाधित क्रम कितने अतीत काल से चला आरहा है। छिल छिल कर मेरे अँग घायल हो गये हैं। वेदना से अन्तः करण चीत्कार करने लगा है।

दया सिन्धु ! सुनती हूँ कि तुम्हारी दया से यह समस्त विश्व परिपूर्ण होरहा है। पापी और दुष्ट जीव भी अनायास ही उस दया का उपभोग करते है। गणिका, गीध, अजामिल तर गये, तो क्या मैं न तर सकूँगी ? प्रेम रूप परमात्मा ! क्या आपके दर्शन मुझे न हो सकेंगे ? मेरा परित्राण न होगा ?

करुणावतार ! अब अधिक मत तरसाओ ! अधिक परीक्षा मतलो, मेरी भुजाओं में बल नहीं है। नौका को खेकर आपके मन्दिर तक लेजाने की मुझमें शक्ति नहीं है। नाथ ! आपही गरुण पर चढ़ कर मेरे उद्धार के लिये चले आओ। आपही मेरी भुजा पकड़ कर पार करदो।

मेरे आराध्य ! आप घट घट बासी हैं। मेरे अन्तराल में व्याप्त होरहे हैं। किससे कहूं और क्या कहूँ ? संसार के माया मोहों से त्रस्त होकर आपकी शरण आई हूं। आप मुझे पार कर दीजिए। अशान्ति के भय सागर में से उबार कर अपने शांतिदायी चरणों में मुझे शरण दे दीजिए। मेरे अन्तस्थल में प्रकट हूजिए। इस घनीभूत अन्धकार में प्रकाश की सुनहरी किरणें बखेर दीजिए मेरे सर्वस्व !

कविता कुञ्ज

उलाहना ।

(श्री भगवानस्वरूप वर्मा 'शूल' आन्तरी)

निशि बासर याद करें तुमको,
फिर भी तुम दर्श दिखाते न हो।
कलपाते हुए निज भक्त को देख के,
कैसे प्रभो, कलपाते रहो ?
किस भाँति पुरानी प्रतीत को नाथ,
बिसारते, डारते, जाते अहो !
हम दारिद, दीन, मलीन रहें,
सुर-स्वर्ग में आप विराजे रहो !!

ज्योति अखण्ड जला दो !

श्री महादेवप्रसाद शर्मा 'प्रिय' काशी)

तिमिराच्छादित उर अन्दर प्रभु,
ज्योति – अखण्ड जला दो।
मोह-निशा के नन्दन-वन में,
विहर रहा मद से परिपूरित—
ध्यान न जिसका तुम में, उसका–
विष–सा राग भुला दो ।
तिमिराच्छादित उर अन्दर प्रभु,
ज्योति–अखण्ड जला दो ।
पद पद पर " प्रिय " पीड़ित होता,
विषय–भोग की विषम–वात से—
बुझते–से इस लघु दीपक को—
कर से स्नेह पिला दो।
तिमिराच्छादित उर अन्दर प्रभु !
ज्योति अखण्ड जला दो ॥

वीर से—

(पं० प्रेम नारायण शर्मा, लश्कर)

उस व्यक्ति का संसार में नर देह धारण व्यर्थ है।
जो दूसरों के साथ पर उपकार में असमर्थ है॥
निज पेट को तो आदमी क्या श्वान भी भरते सदा।
इसमें बड़ाई क्या हुई ? यदि जोड़ली कुछ संपदा॥
निज पूर्वजों के विमल यशका भी तुम्हें कुछ ज्ञान हो।
मा भारती के पुत्र हो, ऋषि रक्त की संतान हो॥
फिर स्वार्थ साधन,दासता,दुख दीनता में व्यस्त क्यों?
मृगराज इन लघु रज्जुओं में बद्ध क्यों ? संत्रस्त क्यों ?
ओ,वीर ! उठ !! नर देहके कुछ कर्म कर,उपकार कर !
पोत, अपना और पराया पार कर, उद्धार कर !!

जीवन–नाटक

(मा०उमादत्त सारस्वत, कविरत्न,बिसवाँ, सीतापुर)

सोचा है क्या कभी जीव ! तू कौन कहाँ से आया है ?
किसने तुझको भेजा है,क्यों नर का यह तन पाया है ?
यह दुनिया है रंग मंच सम,इस पर 'खेल' दिखाना है
चतुर खिलाड़ी ! सावधान ! द्रुत पटाक्षेप हो जाना है
नियत समयके अन्दर तू यदि'पार्ट'न पूरा न कर पाया
भूल गया या वादा वह जो'मालिक'से था कर आया
तो चौरासी लाख योनि के चक्कर में पड़ना होगा।
नरक कुंड में रह कर जाने कितने दिन सड़ना होगा
भांति–भांति के रूप बना कर'अभिनेता' कितने आये
'रोकर' 'गाकर' 'नाच-कूद कर' चले गये जितने आये
क्षण भरका यह 'नाटक' है मत गफ़लत होने पाये कुछ
वह कर जिसमें वाह-वाह हो और काम बन जाये कुछ

समालोचना

प्रेम-दर्शन-मीमांसा—लेखक-आचार्य इन्द्र प्रकाशक—श्रीविष्णु-ग्रन्थमाला, वृन्दावन । प्राप्ति स्थान-गायत्री काक पुस्तक भण्डार, मथुरा, दो भागों में प्रकाशित पुस्तक का मूल्य २) रु० है।

इस ग्रन्थ में अनेकों प्रेम-सम्बन्धी आवश्यक विषय हैं।(१) दृश्य-जगत्, (२) दृश्य-जगत् में सत्य वस्तु क्या है? (३) मानवता की विशेषता (४) मानव जीवन में क्या है? (५) मनुष्य क्या चाहता है? (६) मनुष्य की जिज्ञासा और उसका यत्न, (७) इन्द्रियों की पवित्रता एवं ध्यान जन्य शक्तियों का प्रकाश (८) अन्तःकरण परिचय (९) हृदय क्या है? (१०) हृदयाकर्षण, (११) प्रेम विग्रह. प्रभु कैसा है? (१२) प्रेम-प्राप्ति के उपाय, (१३) प्रेम-व्यथा, (१४) प्रेम का स्वरूप, (१५) प्रेम का अधिकारी, (१६) हृदय में गति क्यों होती है? (१७) क्या आकर्षण को ही पारस्परिक प्रेम कहते हैं, (१८) हृदय और प्रेम, (१९) प्रेम और मोह, (२०) प्रेम और आसक्ति के भाव, (२१) प्रेम और काम, (२२) प्रेम की अवस्थायें, (२३) प्रेम क्या चाहता है? (२४) प्रेम का बाह्य रूप और प्रेम का अन्तरंग रूप, प्रेम और अंगरेजी कवितायें, प्रेम और उर्दू कवितायें, प्रेम और व्रज भाषा की कवितायें, प्रेम और संस्कृत की कवितायें, प्रेम और आँख के आँसू इत्यादि विषय हैं, जो सरल सरस भाषा में, साहित्यक और दार्शनिक पद्धति से लिखे गये हैं। पुस्तक पठनीय और सर्वथा संग्रहणीय है। सुन्दर चिकने कागज पर छपी है, ७०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) अधिक नहीं है।

जीवन सखा—सम्पादक श्री बालेश्वरप्रसाद सिंह तथा श्री विट्ठलदास मोदी, ८७ हिम्मत गंज, इलाहाबाद, वार्षिक मूल्य ३)

'जीवन सखा' गत ५ वर्ष से हिन्दी संसार के स्वास्थ्य साहित्य की बड़ी महत्व पूर्ण पूर्ति कर रहा है। प्राकृतिक विधियों से आरोग्य लाभ प्राप्त करने की इसमें बड़ी खोज पूर्ण चर्चा रहती है। जनवरी मासका १२०पृष्ठका सुन्दर विशेषाङ्क हमारे सामने है, इसका मूल्य १) और संपादक हैं, श्री जानकीशरण वर्मा। विशेषांक के सभी लेख अधिकारी लेखकों के लिखे हुए हैं। छपाई सफाई बहुत सुन्दर हैं। संचालकों का प्रयत्न स्तुत्य है।

सचित्र योग साधन—लेखक योगीराज मुनीश्वर पं० शिव कुमार शास्त्री प्रकाशक-ज्ञान शक्ति, गोरखपुर। पृष्ठ संख्या ३१२ मू० २॥), इस पुस्तक में राज योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा' ध्यान, समाधि का वर्णन है। प्रत्येक विषय पर स्वतन्त्र दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है और इस कठिन विषय को सुलभ रूप से उपस्थित किया गया है। पुस्तक उपयोगी है।

वेदान्त सिद्धान्त—लेखक और प्रकाशक उपरोक्त। पृष्ठ संख्या २५२ मू० २) आत्मा और ईश्वर एक ही वस्तु है। किन्तु लोग भ्रमवश ईश्वर को अलग मानते हैं, फल स्वरूप वे बारह सिंगा की भाँति कस्तूरीके लिये चारों ओर दौड़ते रहते हैं। इस पुस्तक में भली प्रकार समझाया गया है कि ईश्वर आत्मा से भिन्न नहीं। वह बाहर नहीं, आपके अन्दर है। पुस्तक विद्वत्ता और खोज के साथ लिखी गई है।

सत्य सुन्दर और स्वतन्त्र विचार—

लेखक और प्रकाशक उपरोक्त। पृष्ठ ३०४ मू० २॥) ईश्वर और धर्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रम पूर्ण धारणायें जनता में फैली हुई है। इसलिये ईश्वर और धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अनर्थ होते रहते हैं। पुस्तक में ईश्वर और धर्म के सम्बन्ध में स्वतन्त्र विचार प्रकट किये गये हैं, जिससे सत्य बात पर प्रकाश पड़ता है।

"संकीर्तन" का आगामी विशेषांक:—

'संकीर्तन' के पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि हमने अपने आगामी विशेषांक के रूप में उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का भावमय पूरा चरित भेंट करने का निश्चय किया है। अब तक हिन्दी में अनेक श्रीकृष्णचरित निकले हैं, पर उनमें एक भी भक्तों के अनुकूल नहीं। सब उन लीला-पुरुषोत्तम को सामान्य पुरुष मान कर लिखे गये हैं। 'आञ्जनेय' के लेखक की लेखनी से निकला यह चरित प्रति पृष्ठ पर आपको भाव विभोर कर देगा। जिन सज्जनों को इस अद्भुत प्रेममय ग्रन्थ को प्राप्त करना हो, वे अभी से 'संकीर्तन' के आगामी वर्ष के ग्राहक होकर अपना अङ्क रिजर्व करालें। कागज के दाम बहुत बढ़ गये हैं, इससे अङ्क थोड़े ही छपेंगे। फिर नहीं प्राप्त हो सकते।

—विनीत

गङ्गाप्रसाद शर्मा

व्यवस्थापक—संकीर्तन कार्यालय, मेरठ।

विख्यात दार्शनिक विद्वान् आचार्य इन्द्र रचित पुस्तकें जो पौने मूल्य पर मिलेंगी :—

(१) **श्रीकृष्ण लीला-रहस्य**—लगभग २००० पृष्ठों के चार भागों में—श्रीकृष्ण लीला-सम्बन्धी-ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक अन्वेषणों से युक्त-अद्भुत ग्रन्थ संसार के सभी विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मूल्य ६) किन्तु अब ४॥) में।

(२) **प्रेम-दर्शन-मीमांसा**—लगभग ७०० पृष्ठों के दो भागों में—थोड़ी सी प्रतियां शेष रह गई हैं। प्रेम-सम्बन्धी इस महाग्रन्थ को प्रेमियों ने बहुत अपनाया। प्रेम के सभी आवश्यक-प्रसंगों पर सरस, प्रेममयी भाषा में, लिखे हुए इस प्रेम-ग्रन्थ का मूल्य २) किन्तु अब १॥)

निःश्वास—गद्य-काव्य—की० ।=), किन्तु अब ।)

(४) **Sighs**—अङ्ग्रेजी-गद्य-काव्य—की० ॥) किन्तु अब ।=)

(५) **भक्ति रत्नावली**—भागवत महापुराण के चुने हुए प्रेम और भक्ति-बोधक श्लोकों सहित हिन्दी अनुवाद—मूल्य ॥।) किन्तु अब ॥-) में।

मैनेजर—गायत्री काक पुस्तक भंडार,
मथुरा।

"अखण्ड ज्योति" के कुछ अमूल्य रत्न!

यह पुस्तकें आपको देव-दूत बना सकती हैं!!

अपनी अनन्त शक्ति द्वारा, पीड़ित संसार का भला कीजिये ।

अखण्ड ज्योति द्वारा 'सद् ज्ञान ग्रन्थमाला' नामक एक पुस्तकमाला का प्रकाशन भी आरम्भ हो गया है । इस योजना के अनुसार ऐसे ग्रन्थ रत्न प्रकाशित किये जांयगे जो मानव जीवन में एक नवीन क्रान्ति उपस्थित करते हैं । जिस अलभ्य ज्ञान के लिये जीवन का बहुत बड़ा भाग तलाश और अभ्यास में लगाना पड़ता है उसे वैज्ञानिक ढङ्ग से सुगम तरीकों द्वारा समझाया जाता है । और पुस्तक प्रकाशन से पूर्व उस विषय को पूरी तरह से अनुभव एवम् परीक्षा की कसौटी पर कस लिया जाता है । यह ग्रन्थमाला किसी ऐसी पुस्तकों को कदापि प्रकाशित न करेगी जिसकी भली भाँति परीक्षा न करली गई हो ।

अब तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनका परिचय इस प्रकार है ।

(१) मैं क्या हूँ?—यह पुस्तक आत्मा के अमरत्व और उसके वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष चित्र है । सांसारिक भ्रम और माया के कठिन बन्धनों से छुटकारा पाकर आत्मा कैसे मुक्त हो सकती है । इसमें आत्म साक्षात्कार के कुछ अभ्यास बताये गये हैं । इन साधनों को घरेलू काम काजों में लगे रह कर भी प्रतिदिन थोड़े समय में कर सकते हैं और अमर फल प्राप्त कर सकते हैं । मूल्य ।=)

(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान—सूर्य की प्रचण्ड रोगनाशक शक्ति से कठिन और असाध्य रोगों को भी दूर किया जा सकता है । डाक्टरों के अनेक अनुसंधानों का सार लेकर लिखा गया है और यह पुस्तक एक स्वतन्त्र चिकित्सा शास्त्र बन गई है इसी के आधार पर साधारण बुद्धि का आदमी डाक्टरों की भाँति इलाज करके हजारों व्यक्तियों को रोग मुक्त कर सकता है । मूल्य ।=)

(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान—मनुष्य के अन्दर गजब की विद्युत शक्ति है । इसका प्रयोग करके अपने और दूसरों के कष्टों को दूर किया जा सकता है । झाड़ फूंक और तन्त्र मन्त्रों की प्राचीन पद्धति को यह पुस्तक वैज्ञानिक स्वरूप में उपस्थित करती है । विदेशों में इस विधि से बड़े बड़े अस्पताल चल रहे हैं । मूल्य ।=)

(४) पर काया प्रवेश—मनुष्यों के शरीर में प्रेतात्माओं के घुस आने की बात सब लोग जानते हैं । इस पुस्तक में मैस्मरेज्म के ढङ्ग पर कुछ अद्भुत उपाय बताते हैं, जिनके आधार पर आप जीवित अवस्था में भी दूरा के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं और उनके विचारों में आश्चर्य जनक परिवर्तन करके उन्हें अपनी इच्छानुसार चलने को मजबूर कर सकते हैं । मूल्य ।=) वी०पी० से मंगाने पर ।=) पोस्टेज अलग देने होंगे । इसलिये मूल्य मनीआडर से भेजना चाहिये ।

पता—**अखण्ड–ज्योति कार्यालय, मथुरा ।**

दुग्ध-चिकित्सा रोगों को धो डालती है।

दूध शरीर को तो पुष्ट करता ही है रग-रग, नस-नस को धोकर शरीर को निर्मल बना देता है। रक्त शुद्ध हो जाता है और रोग इसके कल्प से चले जाते हैं। रोगों में मृगी से मानसिक रोगों को छोड़ कर इस कल्प से सभी रोग जाते हैं। पाचन-क्रिया की गड़बड़ी से पैदा होने वाले हर प्रकार के रोगों के लिए तो यह कल्प रामबाण है, पर दूध का कल्प दवा के सहारे नहीं प्रकृति के सहारे करना चाहिए। इसकी सारी व्यवस्था स्वास्थ्य गृह में की गई है। नियमावली के लिए पाँच पैसे का टिकट आज ही भेजिए।

मैनेजर—

प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह

८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद

क्या आप जानते हैं ?

शहद स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

१—एक छटाँक शहद पानी में मिलाकर रोज सबेरे पीने से कब्ज दूर होता है।
२—इसके प्रयोग से भूख बढ़ती है।
३—शरीर में ताकत आती है।
४—दूध में मिलाकर शहद पीने से वीर्य-दोष दूर होता है और पुरुषत्व बढ़ता है।
५—शरीर-चर्म सुन्दर और मुलायम होता है।
६—यदि दिल की कमजोरी की दुनिया में कोई भी दवा है तो वह शहद ही है।
७—शहद का इस्तेमाल रोटी, दूध और फलों के साथ किया जा सकता है।

पर ये सब गुण शुद्ध शहद में ही होते हैं। पूरे लाभ के लिये **जीवन-मधु** का उपयोग कीजिए। इसके शतप्रतिशत शुद्ध होने की गारण्टी है। मूल्य फी बोतल (एक सेर) १=) एक रुपया दो आना।

मिलने का पता—

मैनेजर—**प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह**

८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद